

गोर सप्तमं २४८६ वि. २०१७

ई. १२६०

उद्देश्यं श्री १ अमन्त्रि

मुद्रकः—

श्री देवदत्त शास्त्री, विद्याभास्कर
विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान प्रे.
साधुआश्रम, होशिआरपुर ।

प्रास्ताविक कथन

सामाजिक-जीवन की राहों को ठीक रूप में चलाने के लिये दो मार्ग हैं—साधारण धर्म और सत्यधार धर्म—गृहस्थ धर्म और गौश्र धर्म—राजनीति और धर्म—संति ।

जिन समय मनुष्य का सामाजिक रूप नहीं होता (पुन्य-समय होता है) तो उस समय न राजनीति होती है और न ही धर्मनीति। जब समाज में दोष बढ़ते हैं तो फिर सामाजिक-रूप होता प्रारम्भ हो जाता है। धर्म की स्थापना होती है और उस का मुद्रित 'हुक्म' कहा जाता है। वह मुद्रित धर्मों को 'हुक्म' की दृष्टिनीति पर चलाया है। धर्म का वह और दोष बढ़ते हैं तो 'नकार' की दृष्टिनीति प्रयुक्त होती है, इस प्रकार दोषों को दूर करने हेतु धर्म में 'परिवर्तन' नीति, 'वर्तमान' नीति, 'मध्यम-मार्ग' अथवा 'मध्य' 'पारस्परिक' और और 'परिपक्व' अथवा 'परिपक्व' की नीतियाँ प्रयुक्त होती हैं। ये राजनीति की नीतियाँ हैं।

राष्ट्रमोक्षि स्थापित होने पर समेकीति स्थापित होगी है । यह भी एक सामाजिक क्रांति है, परन्तु धर्मशास्त्र-धर्म पर समेकीति स्थापनों का । इस सामाजिक संरक्षण की इस मोक्षि होगी है । ये मोक्षि, राष्ट्रमोक्षि, नहीं, परन्तु सामाजिक-मोक्षि है । केवल, समाज मित्रता है और सामाजिक, महान्—समय की इसकापूर्वक समेकीति कर, महान् किया जाता है, साधुपुत्रों की मोक्षि, जो हुई, महान् समाज—समाज केवल समाज केवल का समेकीति समाज नहीं होता, हाँ । यदि यह सोचो, सोच को

[illegible]



रंघर-विणिज्जराग्रो मोयखस्स पद्दो, तयो पद्दो नासिं ।
त्वसो य पद्दणंगं पच्छित्तं, जं न नाणस्स ॥
सरो चरणं, तस्स पि नेव्याणं, चरण-सोदणत्थं न ।
पच्छित्तं, तेण तयं नेयं मोयखत्थिणाज्यस्सं ॥



साधु मनुष्यापूर्वक निर्दिष्टता करना संभव है ऐसा सभी को पता चल कि उस में नीचता-चार की कमी हुई; तथा निर्दिष्टता करायो कहीं-न-कहीं असावधानी होना भी संभव है जिस में चारित्र्य-चार के दोष भी लग जाते हैं।

नीचा द्वारा नदी को पार करना, नर्गा में लवू-ज-झुआदि की निवृत्ति के लिये जाना इत्यादि अपवादों में शक्ति-हीनता की तो कोई बात नहीं, परन्तु इन सब में असावधानी तो हो ही सकती है जो कि चारित्र्याचार के दोष हैं जिन का विउत्सर्ग नामक पाश्चात् प्रायश्चित्त लिया जाता है। जितनी असावधानी उतना उसका प्रायश्चित्त, एक साधक को लेना ही चाहिये। ज्ञानावलम्बन, दर्शनावलम्बन एवं चारित्र्यावलम्बन से भी अपवाद-मार्ग में दोष-सेवन हो जाते हैं अर्थात् ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र्य की अपनी एवं दूसरों की वृद्धि के लिये उन दोष-युक्त कार्यों को करना पड़ जाता है,^१ परन्तु ऐसा करने वाला साधक यदि अतिपरिणामक है अथवा अपरिणामक है तो वह कल्पिय-दोष का पात्र है और यदि साधक परिणामक है तो वह कल्पिय प्रायश्चित्त वाला माना जाता है जिस के लिये उसे आलोचना-मात्र करनी होती है जो कि प्रथम श्रेणी का प्रायश्चित्त है, परन्तु कल्पिय^२ कार्यों में भी किसी परिणामक से जो-जो असावधानियां हुई हों उनका प्रायश्चित्त उसे पृथक् रूप

१. जैसे कि साधु महाराज का व्याख्यान कराने के लिये जीव जन्तुओं से युक्त स्थान साफ करवाना, दरी बिछाना, चान्दनी लगवाना हवा में चान्दनी का हिलना, दरियों के नीचे जीवों का दब जाना और साधु महाराज का वहां व्याख्यान करना आदि कार्य।

२. कल्पिय=कल्पनीय अर्थात् करने योग्य कार्य।

से लेना होता है। किन्तु प्रतिपरिचामक के जो दोषों दोष हैं उनका प्रायश्चित्त तो बहुत अधिक है और क्षयविज्ञानक को भी अधिक प्रायश्चित्त लेना होता है।

एक ही प्रकार के दोष-लेपन के पीछे भिन्न-भिन्न भावना के आधार पर उनका प्रायश्चित्त भी भिन्न-भिन्न होता है जैसे कि घरोर की घोषा-घाई की एक ही विषय है, परन्तु इस के पीछे भिन्न-भिन्न भावना होने पर प्रलग-प्रलग प्रायश्चित्त है। निर्मोक्ष मूल के तीसरे उद्देश्य में और चोमे उद्देश्य में इसके लिए सप्त-मास का प्रायश्चित्त है, पञ्चरात्र उद्देश्य के मूल १०० और १०४ में सप्त-चोमासी और षट्छे मूल मासों उद्देश्य में गुरुचोमासी प्रायश्चित्त का विधान किया गया है।*

१. एवं पूर्वक कार्य करने के भी दोष है।

२. निर्मोक्ष सूत्र ३। २०—

हे भिक्षु क्षम्यमाणे वाद सीद्धोदय-विरोधे वा उच्छिद्योदय-विरोधे वा पञ्चोदये वा चोदये वा, उच्छेदोदये वा चोदये वा साद्वन्द्ये, न मेवमात्रे क्षम्यमाणे साविधे उच्छिद्योदये उच्छादये।

निर्मोक्ष सूत्र ४। ४—

हे भिक्षु क्षम्यमाणे वाद सीद्धोदय-विरोधे वा उच्छिद्योदय-विरोधे वा पञ्चोदये वा चोदये वा, उच्छेदोदये वा चोदये वा साद्वन्द्ये, न मेवमात्रे क्षम्यमाणे साविधे उच्छिद्योदये उच्छादये।

निर्मोक्ष सूत्र ११। १२—

हे भिक्षु क्षम्यमाणे वाद सीद्धोदय-विरोधे वा उच्छिद्योदय-विरोधे वा पञ्चोदये वा चोदये वा, उच्छेदोदये वा चोदये वा साद्वन्द्ये, न मेवमात्रे क्षम्यमाणे साविधे उच्छिद्योदये उच्छादये।

મગધાનંદ્ર ૩૨૧ ૩૨૨—

જે મિક્ષૂ કિદ્દા-પટિયાળ અળાળો પાણ સીશ્રોદગ-વિયટેણ વા
 ડસિગોદગ-વિયટેણ વા ડચ્છોલેજ્જ વા પધોણ્જ વા, ડચ્છોલંતં વા
 પધોશ્રંતં વા સાહજ્જહ, તં સેવમાણે આહજ્જહ વા ડમ્માણિયં પરિહારદ્ધાણં
 ડગ્ગાદયં ।

નિશીય સૂત્ર ૬ । ૨૮—

જે મિક્ષૂ માડગ્ગામસ્સ મેહુણ-પટિયાળ અળાળો પાણ સીશ્રોદગ-
 વિયટેણ વા ડસિગોદગ-વિયટેણ વા ડચ્છોલેજ્જ વા પધોણ્જ વા,
 ડચ્છોલંતં વા પધોશ્રંતં વા સાહજ્જહ, તં સેવમાણે આહજ્જહ વા ડમ્મા-
 ડસિયં પરિહારદ્ધાણં અણુગ્વાદયં ।

નિશીય સૂત્ર ૭ । ૧૮—

જે મિક્ષૂ માડગ્ગામસ્સ મેહુણ-પટિયાણંઅન્નમન્નસ્મ પાણ સીશ્રોદગ-
 વિયટેણ વા, ડસિગોદગ-વિયટેણ વા ડચ્છોલેજ્જ વા પધોણ્જ વા,
 ડચ્છોલંતં વા પધોશ્રંતં વા સાહજ્જહ, તં સેવમાણે આહજ્જહ વા ડમ્મા-
 ડસિયં પરિહારદ્ધાણં અણુગ્વાદયં ।

(६) सायफलौ रसते दृष्टं भी उक्त कृतयोनी की, अपवाद सेवन करने के पीछे क्या भावना काम करती है ?

इन बातों का विचार कर लेने पर तब कहीं जा कर प्रायश्चित्त का निर्णय हो पाना है ॥

यत्र सामान्य रूप से किञ्च-किञ्च दोष का क्या-क्या प्रायश्चित्त होता है इस प्रकार दस प्रायश्चित्तों का वर्णन यन्मना किया जाता है—

पायच्छिद्रे दसविधे पण्यत्ते तं जहा—

(१) आलोग्यारिहे, (२) पटिककमण्यारिहे, (३) तदुभयारिहे, (४) विवेगारिहे, (५) चिडसन्नारिहे, (६) तवारिहे, (७) छेयारिहे, (८) मूलारिहे, (९) अणवदृढ्यारिहे, (१०) पारंगियारिहे ॥

—भगवतो मूल २५।३।५॥

१. आलोचना—

कणिगुञ्जा ये जंगला, मैतु उदयमस्य निदृषामस्य ।

कउमरमस्य विमोही, जङ्गलं आलोग्यं मणिगु ॥

(गी. २२।५२)

* गुणगोप्यं गुणिगु गुणगोप्यं वि विमोही मणिगु ।

द्विष्टाद्विष्टाद्विष्टा (१) आलोग्यमणिगु (२) कउमर (३) विमोही ॥

गुण (१) विमोही (२) अणवदृढ्य (३) विमोही ॥

कउमर (१) विमोही (२) विमोही (३) कउमर (४) ॥

—गी. २२।५२ ॥ भगवतो मूल २५।३।५॥

परिणामक द्वारा जो कल्याण कार्य उपयोगपूर्वक निरतिनार-
रूप से किए जाते हैं, छद्मस्थ होने के नाते संभावित अतिशय
आदि की विशेष-शुद्धि के लिए साधक आलोचना करता है
जो कि प्रथम प्रायश्चित्त है। जैसे कि—

१. भित्त्वा य गणाश्रो अवकम्म परपासंड-पडिमं उवसंपज्जिताणं विहरेज्जा,
से य इच्छेज्जा दोच्चं पि तमेव गणं उवसंपज्जिताणं विहरिताण; नयिणं
तस्स तप्पत्तियं केइ छेए वा परिहारे वा नन्नत्थ एगाए आलोयणाए ।

—व्यवहार सूत्र १।३२॥

जो साधु अपने गण सम्प्रदाय का त्याग कर अन्य धार्मिक
सम्प्रदाय अङ्गीकार करके विचरे और पुनः पहली सम्प्रदाय में
आना चाहे, तो उसे कोई दीक्षा-छेद व पारिहारिक तप का
प्रायश्चित्त नहीं आता केवल एकमात्र उसे आलोचना करनी
होती है। [क्योंकि उसने अपने संयम में कोई दोष नहीं लगने
दिया है।]

(२) निगंथं च णं राश्रो वा वियाले वा दीहपिट्ठो लूसेज्जा; इत्थी वा
पुरिसस्स ओमज्जेज्जा, पुरिसो वा इत्थीए ओमज्जेज्जा, एवं से कप्पइ, एवं
से चिट्ठइ, परिहारं च से ण पाउणइ—एस कप्पे थेर-कप्पियाणं; एवं से नो
कप्पइ, एवं से नो चिट्ठइ, परिहारं च णो पाउणइ—एस कप्पे जिय-
कप्पियाणं ।

—व्यवहार सूत्र ५।२१॥

— साधु को रात्रि व सायं के समय किसी विप-घर सर्प ने काट
खाया हो, उस समय उपचार जानने वाले किसी पुरुष का
योग न मिले और स्त्री का मिलता हो, तो स्त्री के पास से
उपचार करा लेवे; इसी प्रकार साध्वी को काटा जाने पर
उसे उपचार जानने वाली स्त्री का योग न मिले और पुरुष का
मिलता हो, तो वह साध्वी उस पुरुष से उपचार करा लेवे,

इस प्रकार करना उन्हें कल्पता है और इस प्रकार किया जाता है, उन्हें किसी प्रकार का पारिवर्तनिक तप प्रायश्चित्त नहीं आता—यह स्वयं-कल्पियों की मर्यादा है। परन्तु जिन-कालों साधु को ऐसा करना नहीं कल्पता है और न वे ऐसा करते हैं, न करने पर उन्हें कोई पारिवर्तनिक प्रायश्चित्त नहीं आता। (कल्प-प्रायश्चित्त, केवल आलोचना करनेवाला होता है)

(१) निम्न प दण्डिता मार्ग आश्रित, जो से कण्ड में कला-दुष्टिमा मार्ग आश्रित, कण्ड से में कण्डिष्टमा मार्ग आश्रित। धेरा य से विमोक्षता, मार्ग से कण्ड मार्ग आश्रित; धेरा य से जो विमोक्षता मार्ग से जो कण्ड मार्ग आश्रित। जयार्ग में हिं कण्डिष्टमा मार्ग आश्रित, से मंजरा सेव का पवित्रे का। से से मण्डिष्टमा दण्ड, विमोक्ष, कण्ड से सेवि सेव सेव का पवित्रे का। —कण्डित दण्ड दण्ड।

हिनीय साधक के मन में कुछ मायुष्यों की क्षम विकार विपरीत की दण्डिता हुई, तो उसे स्वयं भगवान् से किया पुष्टि ऐसा करना नहीं कल्पता, उनसे पूछ कर करना कल्पता है। स्वयं भगवान् आता दे देवे तो मायुष्यों को माय केवल विपरीत कर कल्पता है, यदि वे आता न देवे तो ऐसा करना नहीं कल्पता। जो साधक स्वयं भगवान् की आज्ञा किया मायुष्यों को माय केवल विपरीत दिन विमोक्ष, कण्ड से हिं कण्डिष्टमा न पारिवर्तनिक तप का कल्पितता कल्पता है। परन्तु जो साधु अपने माय विपरीत है उन्हें कोई तप न कर प्रायश्चित्त नहीं आता। (विपरीत कल्पितता करनेवाला होता है।)

२. प्रतिजमण—

स्वयं प्रतिजमण कल्पित है तं दण्ड—दण्ड-कण्डिष्टमा,

तदुभयम्

तदुभयम् तदुभयम् तदुभयम् तदुभयम् तदुभयम् ॥
 तदुभयम् तदुभयम् तदुभयम् तदुभयम् तदुभयम् ॥
 तदुभयम् तदुभयम् तदुभयम् तदुभयम् तदुभयम् ॥
 तदुभयम् तदुभयम् तदुभयम् तदुभयम् तदुभयम् ॥
 तदुभयम् तदुभयम् तदुभयम् तदुभयम् तदुभयम् ॥
 तदुभयम् तदुभयम् तदुभयम् तदुभयम् तदुभयम् ॥

इस योगदे आगी-वज्र में, योगों को आता जाता भी जो
 जाता है और भिन्नादिकन भी दिया जाता है। यह निर्वर्तन
 दोनों का होता है वे इस प्रकार है।

मन्त्रभावावस्था में, भवावस्था में, योगावस्था में द्रव्य,
 ध्वज, कान्त एवं भाव की आपद् अवस्था में, उत्पत्त्यापूर्विक
 शीघ्रता से कार्य करने में, अनजान-गन में, कोई कार्य अपने
 वज्र के बाहिर हो जाने से उस समय जान, दर्शन, एवं चारित्र्य
 के मूलगुणरूप पाञ्च महाव्रतों तथा उत्तरगुण दश-विध प्रत्या-
 ख्यान पाञ्च सगिति आदि में जो अतिचार लगते हैं अथवा
 अतिचार-विषयक आशंका होती है तो उस अवस्था में यह
 तीसरा प्रायश्चित्त किया जाता है।

इसी प्रकार जो-जो दुश्चिन्तन किया हो, दुर्भाषा बोली हो,
 दुष्क्रिया की हो तथा उपयोग लगाने पर भी जो देवसी आदि
 अतिचार स्मृति में न आरहे हों उन सब का 'तदुभय' प्रायश्चित्त
 होता है।

अथ कर्मणां भोगानां प्राप्तिः अथवा दान-भोगों में साधनरूप करने, प्रत्येक रत्ने के रूप भी प्राप्त, यमों एवं वास्तविक के हेतु जो एकमात्र निरापना होती है वो। इसका 'बहुभय' प्राचिनिरा होता है ।

४. विवेक—

पितृहोयदि, मेवार्ह गदितं कदञ्चोमिहोवडनेय ।

पञ्चा नायकमुद्रं. त्वहो विहिष्णा विनिवन्तो ॥

मान्नाड्हाणाश्चिद्रव-अमुक्तवयमिव-मद्विषमन्त्रो ह ।

काण्ड-गदित-वन्दितं नन्द-विगितं मन्दो ॥

भीषण, गरम आदि उपकरण एवं यन्त्रादि, कृष्णोष्ण-
 सुखान्तामी द्वारा उपयोज्युर्ध्व पक्ष परसे के पश्चात् प्रयोज्य
 हो कि वह सुखोष्ण पक्ष परसे ही प्रयुज्य है, जो विनिर्मुक्त
 प्रयोज्य स्थान परसे ही, प्रयुज्य है, जो कि भयान्त्रादि प्रयुज्य है ।

इसी प्रकार प्रथम प्रकार के भी वस्तु अस्तु प्रकार के यह
जाने पर; यही समझे गोपि-साध-नाथ के ही उपाय यदि जाने में
एवं प्रकटा रहित हो कर सुधीय में एवं एवं सुधीय के प्रकटा
वस्तु के प्रकटा पर, ऐसे यह जाना यदि कि यही सुधीय नहीं
होता प्रकटा वस्तु हो प्रकटा है जो वस्तु वस्तु की विधिपूर्वक प्रकटा
प्रकटा के प्रकटा प्रकटा है ।

1954年1月1日，中国科学院成立，中国科学院
 1954年1月1日，中国科学院成立，中国科学院
 1954年1月1日，中国科学院成立，中国科学院
 1954年1月1日，中国科学院成立，中国科学院

इस प्रकार चार भेद होते हैं—(१) लघुमास^१, (२) गुरुमास^२, (३) लघुचीमासी, (४) गुरुचीमासी^३। इन चारों के कि. तीन-तीन भेद किए गए हैं—

(१) परवश-पने किसी म्लेच्छ अनार्य राजा आदि तत्प देवता के दवाव से सेवन किए गए उपयोग रहित दोषों के प्रायश्चित्त।

(२) स्वयं आतुरता से उपयोग सहित सेवन किए गए दोषों के प्रायश्चित्त।

(३) जान-बूझ कर मोहनीय-कर्म के उदय से मूर्च्छाभाव पूर्वक सेवन किए गए दोषों के प्रायश्चित्त।

इन वारह प्रकार के तप-प्रायश्चित्तों के जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट तीन-तीन भेद कर देने पर कुल छत्तीस भेद बनते हैं।

इन छत्तीस प्रकार के 'तप' प्रायश्चित्तों में कौन-सा तप और कितना तप होता है यह प्राचीन आचार्य देवों की वारणानुसार नीचे के कोष्ठक में दिया जाता है—

उत्कृष्ट तप-प्रायश्चित्त छः मास का होता है, अतः छः मास के भो दो भेद गणना में आते हैं जैसे कि लघु-छमासी १६५ उपवास, गुरु-छमासी १८० उपवास।

१. लघु-मास से भी छोटा तप-प्रायश्चित्त 'भिन्नमास' आया है जो कि २५ उपवास का होता है।

२. पंचविदे आचार-पक्षे पण्यते तंजहा—(१) मासिए उग्राइए, (२) मासिए अणुग्राइए, (३) चउमासिए उग्राइए, (४) चउमासिए अणुग्राइए, (५) आरोवणा ॥

[illegible][illegible]

यथायं मे गर्भता भूमताय एतं यन्त्रपातुं मयिमातुं यादि
तथायथायन्त्रात् मे यथायथाय करने, कर्मयाने एतं करने यादे
मे यन्त्रा ममभने मे मयुवीमानी प्रत्यक्षिपरा धाता है ।

५. मे निम्न देहिन्त्रां मयिमातुं यन्त्रा यन्त्रिपरा मयिमा-
तुं यन्त्र, यन्त्रे का यन्त्रात्, मे मयिमात् यन्त्रात् यन्त्रात्
निम्नपातुं यन्त्रात् । —निम्न पात १११७७

यथायं मे यन्त्रा यन्त्रां मे यन्त्रा न यन्त्रा मे यन्त्रा
यन्त्रा यन्त्रा मे यन्त्रा यन्त्रा मे यन्त्रा यन्त्रा मे यन्त्रा यन्त्रा
याता है ।

६. मे निम्न यन्त्र-यन्त्रात् यन्त्रा यन्त्रिपरा यन्त्र, यन्त्रे का
यन्त्रात्, मे मयिमात् यन्त्रात् यन्त्रात् यन्त्रात् यन्त्रात् ।

—निम्न पात १११७८

यथायं मे यन्त्रा यन्त्रा यन्त्रा यन्त्रा यन्त्रा यन्त्रा यन्त्रा
यन्त्रा यन्त्रा, यन्त्रा यन्त्रा मे यन्त्रा यन्त्रा मे यन्त्रा यन्त्रा
यन्त्रा यन्त्रा याता है ।

७. मे निम्न यन्त्र यन्त्र, यन्त्रे का यन्त्रात्, मे निम्न यन्त्र
यन्त्र, यन्त्रे का यन्त्रात्, मे निम्न यन्त्र न यन्त्र, मे यन्त्रे का
यन्त्रात्, मे मयिमात् यन्त्रात् यन्त्रात् यन्त्रात् यन्त्रात् ।

—निम्न पात १११७९

यथायं मे यन्त्रा यन्त्रा मे यन्त्रा यन्त्रा मे यन्त्रा यन्त्रा
यन्त्रा यन्त्रा मे यन्त्रा यन्त्रा यन्त्रा यन्त्रा मे यन्त्रा यन्त्रा
यन्त्रा यन्त्रा मे यन्त्रा यन्त्रा यन्त्रा यन्त्रा याता है ।

८. (४) यन्त्रा यन्त्रा यन्त्रा यन्त्रा यन्त्रा यन्त्रा यन्त्रा
यन्त्रा यन्त्रा, यन्त्रा यन्त्रा यन्त्रा यन्त्रा यन्त्रा यन्त्रा
यन्त्रा यन्त्रा, यन्त्रा यन्त्रा यन्त्रा यन्त्रा यन्त्रा यन्त्रा ।

—निम्न पात १११८०

समाप्त के कारण प्रोक्त विधि बिना प्रथमा प्राग-दिन के प्रती-
तिष्ठत्, मातृ-प्राग-दिनकी को सुस-प्राग-दिनकी और सुस प्राग-
दि की मातृ-प्राग-दिनकी कहने वाले और इसे प्रथमा समझने
साधक को सुसमीमाती प्राग-दिनन थाता है ।

१. मे विन्तु कलशोपसंगत् प्रतीतिष्ठत्, प्रतीतिष्ठत् वा मातृप्राग-
दि, प्रतीतिष्ठत् वा प्रतीतिष्ठत्, वा प्रतीतिष्ठत् वा मातृप्राग-दि, मे
मे मातृप्राग-दिनकी प्रतीतिष्ठत् प्रतीतिष्ठत् ।

—विन्तु सुस १०१२, ४१३

समाप्त के कारण प्रथमा प्राग-दिनकी प्रतीतिष्ठत् के कारण
प्रतीतिष्ठत् मे प्रतीतिष्ठत् प्रतीतिष्ठत् और प्रतीतिष्ठत् मे प्रतीतिष्ठत्
की और इसे प्रथमा समझने मे सुसमीमाती प्राग-दिन
है ।

२. मे विन्तु कलशोपसंगत् कलशोपसंगत् कलशोपसंगत्, कलशोपसंगत्
प्रतीतिष्ठत्, मे विन्तु कलशोपसंगत् कलशोपसंगत् प्रतीतिष्ठत् प्रतीतिष्ठत् ।

—विन्तु सुस १०१२, ४१३

को प्रतीतिष्ठत् प्रतीतिष्ठत् सुस सुसकी को प्रतीतिष्ठत् प्रतीतिष्ठत् प्रतीतिष्ठत्
मे प्रतीतिष्ठत् प्रतीतिष्ठत् प्रतीतिष्ठत् प्रतीतिष्ठत् प्रतीतिष्ठत् प्रतीतिष्ठत् प्रतीतिष्ठत्
मे प्रतीतिष्ठत् प्रतीतिष्ठत् प्रतीतिष्ठत् प्रतीतिष्ठत् प्रतीतिष्ठत् प्रतीतिष्ठत् प्रतीतिष्ठत्

३. मे विन्तु कलशोपसंगत् कलशोपसंगत् कलशोपसंगत्, कलशोपसंगत्
प्रतीतिष्ठत्, मे विन्तु कलशोपसंगत् कलशोपसंगत् प्रतीतिष्ठत् प्रतीतिष्ठत्, मे
मे कलशोपसंगत् प्रतीतिष्ठत् प्रतीतिष्ठत् प्रतीतिष्ठत् ।

—विन्तु सुस १०१२, ४१३

प्रतीतिष्ठत् सुस सुसकी को प्रतीतिष्ठत् प्रतीतिष्ठत् प्रतीतिष्ठत्
मे प्रतीतिष्ठत् प्रतीतिष्ठत् प्रतीतिष्ठत् प्रतीतिष्ठत् प्रतीतिष्ठत् प्रतीतिष्ठत् प्रतीतिष्ठत्

[illegible]

— Spring 1971 95173, 24, 280

पूर्णचरणीय कृत्तों में साह्यार धामी, यन्त्र पात्र, तथा यन्त्रि-
मया जेकार जिन-साधन की धर्मात्मता में निहित उनके जाने
में हमें अथवा समझने वाले साधक की सम्पूर्णता की प्राप्ति प्राप्त
मार्ग है ॥

[illegible]

—Богъ и свѣтъ

जो मातृका दुष्ट, दुष्ट परिवार, न लगे मोक्ष पावो वो दुष्ट ब्रह्म
जल-आमल को पतङ्गिका ब्रह्मणा है और इसे ब्रह्मण्य मानना
है जो इसे ब्रह्मण्योपासी मानविषय माना है ।

14. A large group of about a dozen, a flock of twenty, a large group of about twenty or thirty or more, might be seen at different places throughout the morning.

一九五二年一月一日

[illegible]

इत्यादि अनेकों प्रकार के दर्शनाचार-विषयक दोषों के प्रायश्चित्त समझ लेने चाहियें ।

अब चारित्र्याचार के प्रायश्चित्तों का वर्णन किया जाता है ।

विषय, कषाय, निद्रा, मद और विकथा रूप प्रमाद के वशीभूत होकर चारित्र्याचार में जो दोष लगते हैं उनके दो भेद होते हैं, मूलगुण के दोष और उत्तरगुण के दोष । अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह विषयक तथा रात्रि-भोजन-त्याग विषयक दोषों को मूलगुणों के दोष कहा जाता है और पाञ्च समिति, तीन गुप्ति, आहार, विहार, एवं दशविध प्रत्याख्यान विषयक दोषों को उत्तरगुणों के दोष कह जाता है । इन सब दोषों के प्रायश्चित्तों का वर्णन क्रमशः इस प्रकार है—

मूलगुणों के प्रायश्चित्त—

१. जे भिक्षू माउग्गामं मेहुण-वडियाणं विन्नवेइ, विन्नवंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्धाइयं ।

—निशीथ सूत्र ६।१॥

जो साधक किसी स्त्री को मैथुन भाव से कोई वचन कहता है और इस प्रकार के वचन कहने वाले के अशुभ विचारों में रस लेता है तो उसे गुरु-चौमासी प्रायश्चित्त आता है ।

२. जे भिक्षू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाणं लेहं लिहइ, लेहं लेहावेइ; लेहं-वडियाणं वडियाणं गच्छइ, गच्छंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्धाइयं ।

—निशीथ सूत्र ६।१२॥

जो मायाय विमो मर्षी को मंगल भाव में कोई एक विमला
[चमकता हुआ] मे विमलाया है और जिसने के लिए पहिले
पुस्तक खोजने में जाता एक ऐसा काम करने वाले के विचारों में
एक ऐसा है जो हमें गुरु-सीमाओं प्रापदित्य प्रता है ।

[illegible]

जो मायाक माया के महान इन्द्रियों वाली दिनों मयी में
 विषय के माया से किसी के साथ बंधन करना है, बंधनकारी बंधन
 होता है, बंधन करने के लिए, मयी को छोड़ बाह्य मन
 करना है जो न मयी बंध के दिनों में न मयी है जो
 उसे एक-दोमयी का अनुभव होता है ।

[illegible][illegible][illegible]

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

६. जे भिक्षु माउग्गामस्स मेहुण-पडियाण तेइच्छं आउट्टं तेइ
वा, सुत्तं वा, मयत्तं वा, साइज्जं वा, मय्जुत्तं वा यावज्जं वा एतत्तं वा
अवज्जं, आउत्तं वा साइज्जं, तं सेवमाणे आवज्जं चाउम्मासियं
परिहारद्वयं अणुग्घाइयं । —निशीथ सूत्र ११३१

जो साधक अपनी माता के समान किसी स्त्री के साथ
मैथुन करने के भाव से दूध, दही, मायन, गुड़, गाण्ड, शकर,
मिश्री एवं अन्य कोई प्रणीत आहार करता है, एवं ऐसा करने
वाले के विचारों में रस होता है तो उसे गुरुचीमासी का प्राय-
श्चित्त आता है ।

७. जे भिक्षु माउग्गामस्स मेहुण-पडियाण तेइच्छं आउट्टं तेइ
आउट्टं वा साइज्जं, तं सेवमाणे आवज्जं चाउम्मासियं परिहारद्वयं
अणुग्घाइयं । —निशीथ सूत्र ७७६

जो साधक किसी स्त्री के साथ मैथुन के भाव से शरीर व
चिकित्सा स्वयं करता है श्रीरों से करवाता है श्रीर करते हुए
को अच्छा समझता है तो उसे गुरुचीमासी प्रायश्चित्त आता है

८. जे भिक्षु माउग्गामस्स मेहुण-पडियाण मणुत्ताइं पोगल
उवकिइ, उवकिरंतं वा साइज्जं, तं सेवमाणे आवज्जं चाउम्मासि
परिहारद्वयं अणुग्घाइयं । —निशीथ सूत्र ७८०

जो साधक मैथुन भाव से सुगन्धित पुद्गलों को, शरीर व
वस्त्र पर अथवा स्थानक में बिखेरता है एवं इसे अच्छा समझ...
है तो उसे गुरुचीमासी प्रायश्चित्त आता है ।

९. जे भिक्षु माउग्गामस्स मेहुण-पडियाण असणं वा पाणं वा खाइमं
वा साइमं वा देइ, देंतं वा साइज्जं; पडिच्छइ, पडिच्छंतं वा साइज्जं, तं
सेवमाणे आवज्जं चाउम्मासियं परिहारद्वयं अणुग्घाइयं ।

—निशीथ सूत्र ७८५, ८६॥

जो साधक मैथुन भाव से किसी को अज्ञान-प्राप्ति देता है, विनयाता है और देने वाले के वाचुन विचारों से रक्त होता है, इसी अज्ञान मैथुन भाव से अज्ञान-प्राप्ति स्वयं स्वयं करता है और जो अज्ञान समझता है सो उसे गुरुजीमासी का मानविषय जाता है ।

१०. मे निम्न साधकमात्र में भूत-वर्तमान, कर्म का परिणाम का हेतु का वाचुनमात्र या हेतु, हेतु का वाचुन, परिणाम, परिणाम का वाचुन, मे भिन्नाने वाचुन वाचुनमात्र परिणाममात्र वाचुनमात्र ।

—निम्न साधक १००, १००

जो साधक मैथुन भाव से किसी को अज्ञान, वाच, वाचुन, वाचुनमात्र देता है, विनयाता है और देने अज्ञान समझता है, इसी अज्ञान मैथुन भाव से स्वयं स्वयं करता है तथा उसे अज्ञान समझता है सो उसे गुरुजीमासी का मानविषय जाता है ।

११. मे निम्न साधकमात्र में भूत-वर्तमान, कर्म का परिणाम का वाचुन, परिणाम, परिणाम का वाचुन, मे भिन्नाने वाचुन वाचुनमात्र परिणाममात्र वाचुनमात्र ।

—निम्न साधक १००, १००

जो साधक किसी को मे मैथुन के भाव से उसे अज्ञान है अज्ञान अज्ञान करता है और देने अज्ञान अज्ञान के विचारों से वाचुनमात्र करता है सो उसे गुरुजीमासी का मानविषय जाता है ।

१२. मे निम्न साधकमात्र में भूत-वर्तमान, कर्म का परिणाम का वाचुन, कर्म का वाचुन मे भिन्नाने वाचुन वाचुनमात्र परिणाममात्र वाचुनमात्र ।

—निम्न साधक १००, १००

जो साधक किसी को मे मैथुन के भाव से उसे अज्ञान है अज्ञान अज्ञान करता है और देने अज्ञान अज्ञान के विचारों से वाचुनमात्र करता है सो उसे गुरुजीमासी का मानविषय जाता है ।

मासी को सन्तुष्ट रखना है तो उसे गुरुचीमासी का प्रायश्चित्त आता है ।

१३. निगन्धिं च नं गिलायमाणं पिता वा भ्राता वा भ्रातृ पत्न्यस्य पुता, तं च निगन्धिं साङ्गजेजा, मेहुणपडिसेवणपत्ता आवज्ज चाउम्मासियं परिहारद्वाणं अणुग्घाइयं । —वृहत्कल्प सूत्र ४।११

कारण पड़ने पर कोई साधू किसी साध्वी की रुग्णावस्था में सेवा करता हुआ उसे माता नहिन व पुत्री समझ कर कर रहा है, परन्तु इस बीच उसका मन विकृत हो जाए अर्थात् मैथुन के भाव आ जाएँ तो उसे गुरुचीमासी का प्रायश्चित्त आता है ।

१४. निगन्धिं च नं गिलायमाणं पिता वा भ्राता वा पुते वा पत्न्यस्य पुता, तं च निगन्धिं साङ्गजेजा, मेहुणपडिसेवणपत्ता आवज्ज चाउम्मासियं परिहारद्वाणं अणुग्घाइयं । —वृहत्कल्प सूत्र ४।१०

किसी कारण के आ पड़ने पर कोई साध्वी किसी साधु की रुग्णावस्था में सेवा कर रही है और अपने मन में पिता भाई व पुत्र की भावना लिये हुए है परन्तु बीच में यदि उसके मन में मैथुन के भाव आ जाएँ तो उसे गुरुचीमासी का प्रायश्चित्त आता है ।

१५. निगन्धिं च य राश्रो वा वियाले वा उच्चारं वा पासवणं वा विगिञ्चमाणीं वा विसोहेमाणीं वा अन्नयरे पसुजाईं वा पक्खिजाईं वा अन्नयर-इन्द्रियजां तं परामुसेजा, तं च निगन्धिं साङ्गजेजा, हत्यकम्म-पडि-सेवणपत्ता आवज्ज चाउम्मासियं परिहारद्वाणं अणुग्घाइयं ।

—वृहत्कल्प सूत्र ५।१३॥

कोई साध्वी, सायं अथवा रात्रि में उच्चार-प्रश्रवण करने गई, किसी जीव-जन्तु अथवा काष्ठ आदि का उसके शरीर-

नियमों की मर्यादा है, मेहुणपट्टियेणपत्ता आनन्द चाउम्यायिणं परिहारणं
 न्यायमाह्यं । देतो य इणियम्भं निरनिता निगंभी परिमाहेता, तं य
 निगंभी साइजेता, मेहुणपट्टियेणपत्ते आनन्द चाउम्यायिणं परिहारणं
 न्यायमाह्यं, देतो य इणियम्भं निरनिता निगंभी परिमाहेता, तं य
 निगंभी साइजेता, मेहुणपट्टियेणपत्ता आनन्द चाउम्यायिणं परिहारणं
 न्यायमाह्यं ।
 —वृहत्संहिता सूत्र ११११११

१६. जे भिगू लहुसगं फलसं वयइ, वयंतं वा साइजइ, तं सेवमाणे
 आवजइ मासियं परिहारणां उगवाइयं । —निशीथ सूत्र २११६॥

जो साधक जरा सी भी वाचनिक हिंसा स्वयं करता है
 दूसरे से करवाता है और करने वाले को अच्छा समझता है
 तो उसे लघुमास का प्रायश्चित्त आता है ।

२०. जे भिखू लहुसगं मुसं वयइ, वयंतं वा साइजइ, तं सेवमाणे
 आवजइ मासियं परिहारणां उगवाइयं । —निशीथ सूत्र २११६॥

जो साधक थोड़ा सा भी मृपावाद स्वयं बोलता है दूसरे
 से बुलवाता है और इसे अच्छा समझता है तो उसे लघुमास का
 प्रायश्चित्त आता है ।

२१. जे भिखू लहुसगं अदत्तं आइयइ, आइयंतं वा साइजइ, तं
 सेवमाणे आवजइ मासियं परिहारणां उगवाइयं ।

—निशीथ सूत्र २१२०॥

जो साधक सूक्ष्म चोरी—विना आज्ञा किसी की वस्तु
 ग्रहण करता है, करवाता है और ग्रहण करने वाले को अच्छा
 समझता है तो उसे लघुमास का प्रायश्चित्त आता है ।

२२. जो कपड़ निगंथाण वा निगन्धीण वा वेरज-विरुद्ध-रज्जंसि सज्जं

साधक साधकवर्ती को आहार का आशय नहीं करता क्योंकि उसे रात्रि-भोजन का कोई दोष नहीं लगता । यदि वह उसे उस आहार को करता है अथवा किसी मनुष्य को देता है तो उसे गुरु-चौमासी का प्रायश्चित्त आता है ।

२४. भिक्षु य उग्रावित्तीण अण्णमियसंकप्पे संशयिण विदग्धिद्वारासमावन्ने असणं वा ४ पडिग्गाहेत्ता आहारमाहारेमाणे अह पच्छा जाणेजा—अणुग्गणं सूरिणं अण्णमिणं वा, मे जं च मुदे, जं च पाणिमि, जं च पडिग्गाहे, तं निगिज्जमाणे निगोहेमाणे नाद्धकमद्द; तं अण्णणा भुज्जमाणे सन्नेसिं वा अणुप्पदेमाणे आचज्जद् नाउम्मासियं परिहारद्धानं अणुत्ताड्यं ।

—वृहत्कल्प सूत्र ५७७

भिक्षु का संकल्प है कि सूर्योदय से पूर्व तथा सूर्यास्त के पश्चात् वह आहार न करेगा । साधक, शरीर से कष्ट सहन करने में समर्थ है परन्तु धूल आदि से व मेघाच्छन्न आकाश होने के कारण उसके मन में तद्विषयक सन्देह है, किसी अन्य से पूछा, उसके कहने पर विश्वास करके आहार ग्रहण कर लिया और उसे करने लगे, तब उस समय साधक को मेघ आदि के हट जाने से ज्ञात हुआ कि अभी तो सूर्योदय नहीं हुआ अथवा सूर्य अस्त हो चुका है । उस समय यदि वह साधक मुख में डाला आहार बाहिर निकाल दे, हाथ में लिया हुआ छोड़ दे और पात्र में पड़ा परठ दे, तो उस साधक को रात्रिभोजन का कोई दोष नहीं लगता । किन्तु यदि वह साधक उस समय आहार करता जाता है (कि दोष तो लग ही चुका, आहार कर ही लें) अथवा दूसरे किसी महाव्रती को देवे तो उसे गुरु-चौमासी का प्रायश्चित्त आता है ।

२५. भिक्षु य उग्रावित्तीण अण्णमियसंकप्पे असंथडिण निव्विड्गिच्छे असणं वा ४ पडिग्गाहेत्ता आहारमाहारेमाणे अह पच्छा

२७. इह मन्त्र निगमय्य वा निगम्यैव वा गच्छे वा विधाते वा
 गमाम्ने मभोगम्ने उगमावे आगच्छेता, सं निगम्यमाणे निगोहेमाणे
 नाद्वयमदः सं उगम्यिता पञ्चोमित्तमाणे राद्वभोगपदिगेपणपते आपन्नद्व
 पाउम्मागिपे पदिताग्दाम्ने अनुत्तादये ॥ — बृहत्कल्प सूत्र ५।१०॥

किसी साधक को मूर्यास्त के पश्चात् उगमाल आजाए तो
 वह बाहिर थूक दे तो कोई प्रायश्चित्त नहीं आता किन्तु यदि
 वह अन्दर ही निगमल जाए तो उसे रात्रिभोजन का दोष
 लगता है और उसे गुरुचीमासी का प्रायश्चित्त आता है ॥

२८. तपुणं ते ब्रह्मे णिमंथा य णिमंथीश्रो य समणस्स भगवश्रो
 महावीरस्स अंतिण्ण्यमट्ठं सोच्चा णिसम्म, समणं भगवं महावीरं वंदद्द
 नमंसद्द २ तस्स ठाणस्स आलोयंति पडिक्कमंति जाय अत्तारिहं पायच्छित्तं
 तवोक्कमं पडिवज्जंति ॥ — दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र १०।५६॥

११. जे भिक्षू परं वीभावेइ, वीभावंतं वा साइज्जइ; जे भिक्षुविभावेइ, विभावंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे पावज्जइ, चाउ परिहारद्वाणं अणुगवाइयं ॥

— निशीथ सूत्र १११६

जो साधक दूसरों को भय दिलाता है एवं उन्हें विस्मय डालता है और इसे अच्छा समझता है तो उसे लघुचीमासी का प्रायश्चित्त आता है ॥

१२. जे भिक्षू गिहि-मत्ते भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे चाउम्मासियं परिहारद्वाणं उग्वाइयं ॥ — निशीथ सूत्र १२१

जो साधक गृहस्थ के पात्र में आहार करता है और काले को अच्छा समझता है तो उसे लघुचीमासी का प्रायश्चित्त आता है ॥

१३. जे भिक्षू अन्नउत्थिण्ण वा गारत्थिण्ण वा उवहिं वहावेइ, वहावंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारद्वाणं उग्वाइयं ॥

— निशीथ सूत्र १२१४०

जो साधक अन्यतीर्थी तथा गृहस्थ को अपना सामान उठवाता है और उठवाने वालों को अच्छा समझता है तो उसे लघुचीमासी का प्रायश्चित्त आता है ॥

१४. जे भिक्षू महानईओ उद्धिटाओ गणियाओ वज्जियाओ अंतो-मासस्स दुक्खुत्तो वा तिक्खुत्तो वा उत्तरइ वा संतरइ वा, उत्तरंतं वा संतरंतं वा साइज्जइ, तं जहा—गंगा, जउणा, सरऊ, पुरावई, मही; तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारद्वाणं उग्वाइयं ॥

— निशीथ सूत्र १२१४१॥

जो साधक एक मास के अन्दर दो बार बड़ी नदियों में उतरे एवं उन्हें पार करे और ऐसा करने वाले को अच्छा समझे तो उसे लघुचीमासी का प्रायश्चित्त आता है ॥

सहा-सामयिक

१५. जे भित्तू बहाण कबाल केर, केरन का सहाय, न सेवकाने
महा-साधनसिधे परिहाण्डन उपबन्धन ॥ —विशेष सूत्र ११ ३१०

जो साधक भीने से ब्रह्मना मुन देवता है और इसे ब्रह्मना
ममता है तो उसे सधुनीमायी का प्रायश्चित्त ध्याना है ।

१६. जे भित्तू विजायि भुज, भुज का सहाय, जे भित्तू भग-
वि भुज, भुज का सहाय, न सेवकाने ब्रह्मना साधनसिधे परिहाण्डन
उपबन्धन ॥ —विशेष सूत्र ११३५, ३१४

जो साधक विद्या सिद्धा का तथा मुन देवता न ब्रह्मना
ममता है और ब्रह्म करने वाले को ब्रह्म ममता है तो उसे
सधुनीमायी का प्रायश्चित्त ध्याना है ॥

१७. जे भित्तू विजाय परिहाण्डन उपबन्धन केर का सहाय, न
सेवकाने ब्रह्मना साधनसिधे परिहाण्डन उपबन्धन ॥ —विशेष सूत्र ११३६, ३१५

जो साधक करने वाली को ब्रह्म ममता है तो उसे सधुनीमायी
का प्रायश्चित्त ध्याना है ॥

१८. जे भित्तू ब्रह्मना साधनसिधे परिहाण्डन उपबन्धन का सहाय
का, करने का, सहाय का, केर, तो का सहाय, सहाय का,
सहाय का, सहाय का, सहाय का, केर, तो का सहाय, न सेवकाने
ब्रह्मना साधनसिधे परिहाण्डन उपबन्धन ॥ —विशेष सूत्र ११३७, ३१६

जो साधक सधुनीमायी का सहाय का साधनसिधे परिहाण्डन
उपबन्धन सूत्र ११३८, ३१७ है और इसे सहाय का सहाय का
है और इसे सहाय का सहाय का सहाय का सहाय का सहाय का
सहाय का सहाय का सहाय का सहाय का सहाय का सहाय का

—निशीथ सूत्र १५।१२, १४॥

जो साधक अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ से अपने पाँव साफ करवाता है तथा उन से दवाता है और ऐसा करवाने वाले अन्य साधकों को अच्छा समझता है तो उसे लघुचीमासी का प्रायश्चित्त आता है ॥

२१. जे भिन्नम् अन्नउत्थिण्ण वा गारत्थिण्ण वा अप्पणो कायंसि गंठं वा अरुह्यं वा असियं वा भगंदलं वा अन्नयरेणं तिम्येणं सत्थजाण्णं आच्छिदेज्ज वा विच्छिदेज्ज वा, आच्छिदित्ता विच्छिदित्ता पूयं वा सोणियं वा नीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा, नीहरित्ता विसोहेत्ता सोओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोण्ण वा, उच्छोलित्ता पधोत्ता अन्नयरेणं आलेवण-जाण्णं आलिपेज्ज वा विलिपेज्ज वा आलिपित्ता विलिपित्ता तेल्लेण वा, घण्ण वा, वसाण्ण वा, नवणोण्ण वा, अब्भट्ठोज्ज वा मक्खेज्ज वा, अब्भङ्गित्ता मक्खित्ता अन्नयरेण धूवण-जाण्णं धूवेज्ज वा पधूवेज्ज वा, एवं करंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारह्वाणं उग्घाड्यं ॥

—निशीथ सूत्र १५।३६॥

जो साधक प्रमाद में पड़ा रह कर, आस-पास अन्यतीर्थी एवं गृहस्थों के आने-जाने के स्थान में आहार-पानी करता है और ऐसे स्थान पर आहार-पानी करने वाले को अच्छा समझता है तो उसे लघुचीमासी का प्रायश्चित्त आता है ॥

२४. जे भिक्षू असणं वा पाणं वा खादमं वा सादमं वा उसिणुसिणं पडिग्गाहेइ, पडिगहंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारद्वाणं उग्घाडयं ॥
—निशीथ सूत्र १७।१३१॥

जो साधक, अत्युष्ण से भी अधिक गरमागरम आहार-पानी ग्रहण करता है, और इसे अच्छा समझता है तो उसे लघुचीमासी का प्रायश्चित्त आता है ॥

२५. जे भिक्षू सागारिय-पिंडं गिरहइ; गिरहंतं वा साइज्जइ, तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारद्वाणं उग्घाडयं ॥

—निशीथ सूत्र २।३६॥

जो साधक शय्यातर का आहार ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने को कहता है या इसे अच्छा समझता है तो उसे लघुमास का प्रायश्चित्त आता है ॥

२६. नो कप्पइ निगंथाण वा निगंथीण वा सागारिय-पिंडं वहिया नीहडं असंसट्ठं संसट्ठं करेत्तए । जे खलु निगंथे वा निगंथी वा सागारियपिंडं वहिया नीहडं असंसट्ठं संसट्ठं करेइ करंतं वा साइज्जइ, से दुहओ वीइक्कम-माणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारद्वाणं अणुग्घाडयं ॥

—बृहत्कल्प सूत्र २।१८॥

शय्यातर के घर के आहार में से बाहिर निकाला हुआ अंश जो कि अभी तक दूसरे के अधिकार में नहीं हुआ और उसके आहार में नहीं मिला लिया गया, तो वह शय्यातर के आहार का अंश साधु-साध्वी को ग्रहण करना नहीं कल्पता ।

साधु-साध्वी उसे ग्रहण करने के लिये उन धन को
अथवा कन्या, और साधु-साध्वी को देने के निमित्त
अथवा करने वाले को अथवा नामके (साधु-साध्वी अथवा
ने गुरु साहज को ग्रहण करें) तो वह तीर्थकर देव और
जिह्वाओं की प्राप्ति का उत्पन्न करता है और उसे
जीवन्तों का प्रायश्चित्त आता है ॥

[illegible][illegible][illegible][illegible]

अवस्था की अशक्तता के कारण उसे तप प्रायश्चित्त न देकर छेद-प्रायश्चित्त दिया गया, ये बदल के प्रायश्चित्त हुए। किसी प्रायश्चित्त का बदल न होकर छेद प्रायश्चित्त उसे आता है जो बिना कारण अपवाद-मार्ग का आसेवन करता है ॥

उत्सर्ग-मार्ग और अपवाद-मार्ग का क्या वास्तविक स्वरूप है? और इस के किस प्रकार प्रायश्चित्त होते हैं? ये सब बातें इस प्रकार जाननी चाहियें—

उत्सर्ग का अर्थ है—‘उत्सृज्य विशेष-प्रसङ्गान् यः सामान्य-नियमः स उत्सर्गः।’ हीनतर तथा उच्चतर विशेषप्रसङ्गों को छोड़कर जो सामान्य विधि होती है उसे उत्सर्ग-मार्ग कहते हैं और जो असामान्य अवस्था में आचरण किया जाए उसे अपवाद-मार्ग कहते हैं।

उच्चतर विशेषप्रसङ्गों के अपवाद—

(१) वेश्या के सानिध्य में वास नहीं करना * यह उत्सर्ग-मार्ग है, किन्तु स्थूलभद्र जी महाराज ने वेश्या के घर चातुर्मास किया। उन की आत्मा विशेष बलवान थी इस लिये यह अपवाद-रूप था।

(२) कोई साधक सहसा बारहवीं पडिमा धारण नहीं करता यह सामान्य नियम उत्सर्ग-विधि है परन्तु श्री गजसुकुमार जी महाराज ने दीक्षा लेते ही बारहवीं पडिमा का वाहन किया और अपने लक्ष्य की प्राप्ति की। उन में विशिष्ट आत्मशक्ति होने के कारण यह अपवाद-विधि थी।

* न चरेज्ज वेस-सामंते, वंमचेरवसाणुए ।

वंमयारिस्स दंतस्स, होज्जा तथ विओत्तिआ ॥

सूत्र ५।१।६॥

सातवां-प्रायश्चित्त

(३) प्रनाय धोत्र में बिहार नहीं करना यह उत्सर्ग-मार्ग
 प्रनाय धोत्र के लिये प्रनाय क्षेत्र में बिहार किया भी
 प्रनाय धोत्र के लिये प्रनाय क्षेत्र में बिहार किया भी
 प्रनाय धोत्र के लिये प्रनाय क्षेत्र में बिहार किया भी

(3) प्रनाय क्षेत्र में प्रितु
समु विनेय साधन के लिये प्रनाय क्षेत्र
है जो कि अपवाद-रूप है।¹

(4) नदी के तीर पर प्रासुक जल भी नहीं पिया जाता;
नदी के तीर पर प्रासुक जल भी नहीं पिया जाता है।²

कच्चे पानी की प्राशंका का व्यवहार हो जाता है।³

प्राशंक की तीव्र उष्णता में रात्रि को नि
महाप्रती साधक बारह
अपने शरीर

(१) नदी के तीर पर प्रामाणिक जल नौका जाता है।
 (२) जल में पानी की प्राणिकता का व्यवहार हो जाता है।
 (३) जल में पानी की प्राणिकता में रात्रि को गिरने
 वाली शक्ति कम हो जाती है परन्तु सहायता साधक बारह ही
 रात्रि रात्रि की छाया से बाहर जाते समय अपने शरीर को
 रोकता है।

...के अन्तर्गत प्रसन्न के अन्तर्गत प्रसन्न —
...के अन्तर्गत प्रसन्न के अन्तर्गत प्रसन्न —

[illegible][illegible]

— १९५५ मध्ये ११५६११

(३) अनाथ क्षेत्र में बिहार नहीं करना यह उद्योग-भाग के अन्तर्गत विशेष साधन के बिना अनाथ क्षेत्र में बिहार किया भी जाता है जो कि अनाथ-रूप है । १

(४) नदी के तीरे पर श्रावक जग भी नहीं चिया जाता; क्योंकि कच्चे पानी की श्रावक का व्यवहार हो जाता है।*

(२) ज्येष्ठ मासात् को तीव्र उष्णता में रात्रि को निद्रा न आवे सो भय हो जाती है, पित्तु मासकी मासिक वायु ही गर्हने रात्रि को उष्णता में बाहिर जाने समर्थ करने परीर को दीवता है ॥

हीनार जगन्नी के लक्षण :-

(१) मायक सविता जन का मधुन की वरदा मा
जगन्माया है वरदा देवी माया न हीं जग माया के नीचे

[illegible][illegible]

2000年12月22日 星期一

2. 2014年12月31日，公司应收账款账面余额为1,000,000.00元，坏账准备余额为100,000.00元。

(११) जिस उपाश्रय में रात्रि-भर ज्योति जलती रहे उस उपाश्रय में साधक नहीं ठहरा करते परन्तु अन्य स्थान उपलब्ध न होने पर एक दो रात्रि पर्यन्त उस स्थान में ठहरा जा सकता है ।^१

(१२) साधक गृहस्थ के रहने के मकान में अल्पकाल भी न ठहरे परन्तु वृद्धत्व, रोग और तपस्या के कारण ठहर सकता है ।^२

(१३) साधक गोचरी को जाते समय लघुशङ्कादि से युक्त न हो, यदि रास्ते में बाधा हो ही जाए तो स्थान के स्वामी की आज्ञा लेकर प्राप्तुक स्थान देख कर निवृत्त हो सकता है ।^३

सहसा वा बलसा वा बाहाए गहाय रायंतेउरमणुपविसेज्जा ४, बहिया वणं आरामगयं वा उज्जाणगयं वा रायंतेउरजणो सच्चओसमंता संपरि-
क्खवित्ताणं निविसेज्जा ५, इच्चेहि पंचहि ठाणेहि समणे निगंथे
रायंतेउरमणुपविसमाणे नाइक्कमइ ॥

—ठाणांग सूत्र ५।२।२॥

१. उवस्सयस्स अंतोवगडाए सच्चराइए जोई भियाएज्जा, नो कप्पइ
निगंथाण वा णिगंधीण वा अहालन्दमवि वत्थए । दुरत्था य उवस्सयं
पडिलेहमाणे नो लभेज्जा, एवं से कप्पइ एगरायं वा दुरायं वा वत्थए ॥

—वृद्धकल्प सूत्र २।६॥

२. तिण्हमन्नयरागस्स, निसिज्जा जस्स कप्पइ ।

जराए अभिभूअस्स, बाहिअस्स तवस्सिणो ॥

—दशवैकालिक सूत्र ६।६०॥

३. गोअरगपविहो अ, वच्चमुत्तं न धारए ।

ओगासं फासुअं नच्चा, अणुन्नविय वोसिरे ॥

—दशवैकालिक सूत्र ५।१।१६॥

(१९) नवमें तथा दशमें प्रायश्चित्त जाने को गृहस्थी बना कर नई दीक्षा दी जाती है किन्तु विधेयावरण में गण की प्रतीति के बिना बिना गृहस्थी बनाए भी नई दीक्षा देकर नवमां तथा दशमां प्रायश्चित्त दे दिया जाता है ।^१

(२०) सामान्योक्त होने पर भी साधु साध्वी एक दूसरे के दोषों प्रकार की धर्मपातन नहीं करवा सकते, किन्तु कोई दोषपात करने वाला न हो तो करवा भी सकते हैं ।^२

४५ प्रकार व्यवहार मूल २५६ मे १७ में रोग के कारण, गृहस्थ मूल २५६ मे २० में धर्मविनय का त्याग और व्यवहार मूल २५६ में शम्भा की दुर्लभता तथा गृहस्थ मूल २५६

१. अनात्मन विदुः कतिदिभूतं वा कथं तस्य मन्त्र-
वर्धनस्य उपहासितम् । अनात्मन विदुः कतिदिभूतं कथं तस्य
मन्त्रवर्धनस्य उपहासितम् ।

२. अनात्मन विदुः कतिदिभूतं वा कथं तस्य मन्त्रवर्धनस्य
उपहासितम् । अनात्मन विदुः कतिदिभूतं कथं तस्य मन्त्रवर्धनस्य
उपहासितम् ।

अनात्मन विदुः कतिदिभूतं वा कतिदिभूतं वा कथं तस्य मन्त्र-
वर्धनस्य उपहासितम्, अनात्मन मन्त्रवर्धनस्य उपहासितम् ।

अनात्मन विदुः कतिदिभूतं वा कतिदिभूतं वा कथं तस्य मन्त्र-
वर्धनस्य उपहासितम्, अनात्मन मन्त्रवर्धनस्य उपहासितम् ।

—अनात्मन मूल २५६ मे १७ में

१. अनात्मन विदुः कतिदिभूतं वा कतिदिभूतं वा कथं तस्य मन्त्र-
वर्धनस्य उपहासितम्, अनात्मन मन्त्रवर्धनस्य उपहासितम्, अनात्मन
मन्त्रवर्धनस्य उपहासितम् ।

—अनात्मन मूल २५६ मे १७ में

दुःखी, विविध दोषों का यथा-योग्य उपचार देना और प्रायश्चित्त देना उसे संगम में स्नानावापन करे ॥

इसी प्रकार गण को दोष कर कोई भाग्यवान् अशु-विहारी, असौख्य-विहारी, अशान्त-विहारी तथा अशान्त-विहारी हो जाए और वह पुनः संगम में आना चाहे, यदि उस में संगम-पालन के भाग्य अभाव हो तो उसे आनोचना, प्रतिव्रज, तथा और दीक्षा-छेद के प्रायश्चित्त द्वारा शुद्ध करके संगम में उपप्रस्थापन करना चाहिये ॥

७. भिरन् गं अदिगमं कटुं, तं अदिगमं अनियोगेता, इत्येता अन्नं गणं उग्रपञ्चितां चिरितां, कपडं तस्य पत्रा-राश्यां धेयं कटुं परिणिज्वाति २ तमे गणं पञ्चिजाप्यते सिया, जहा य तस्स गणस्स पत्तिं सिया ॥
—गृह्यसूत्र ५५॥

कोई साधक क्लेश भगड़ा करके और उस क्लेश को उपशान्त किये बिना अन्य संघाटक में मिलना चाहे, तो उसे पाञ्च दिन के दीक्षा-छेद का प्रायश्चित्त देकर अपने पास रखना कल्पता है। इस प्रकार रख कर फिर उचितावसर पर कोमल वचनों द्वारा उसे समझा-बुझा कर वापिस उसी संघाटक में मिला देना चाहिये जहां से वह आया था जिससे गच्छ में प्रतीति बनी रहे ॥

८. से गामंसि वा, नगरंसि वा, निगमंसि वा, रायहाणिसि वा एगवगडाए, एगदुवाराए, एगनिक्खमणपवेसाए, नो कप्पइ वहूणं अगडसुयाणं एगयओ वत्थए । अत्थि या-इ रहं केइ आयार-पकप्प-धरे, नत्थि रहं केइ छेए वा परिहारे वा; नत्थि या-इ रहं केइ आयार-पकप्प-धरे से सन्ता छेए वा परिहारे वा ॥

यदि स्थाविर भगवान्, एवं साधकः स्थाविर भगवान्, यदा स्थाविर भगवान् कर विचरण करने की कल्पता, तो उसे स्थाविर भगवान् के विना पूरे उद्योग ऐसा करना नहीं कल्पता, उसे पूरा कर, सोने के गणधारण कर विचरण करने की अपागम पूर्ण आज्ञा प्रदान कर दें, तो उसे गणधारण कर विचरण करना कल्पता है; यदि स्थाविर भगवान् आज्ञा न दें, तो गणधारण कर विचरण करना नहीं कल्पता, यदि वह साधक स्थाविरों की आज्ञा बिना गणधारण करके विचरण करे तो उसे उतने ही दिन का दीक्षा-छेद वा पारिहारिक तप का प्रायश्चित्त आता है ॥

१०. नदी साधमिया इन्द्रेजा एगमयो अभिन्न-चारिणं चारणः सो गतं, कषट्ठं गेरे अणुचिदुता एगमयो अभिन्न-चारिणं चारणः, कषट्ठं गतं गेरे अणुचिदुता एगमयो अभिन्न-चारिणं चारणः । गेरा य से निपरेजा, एतं गतं कषट्ठं एगमयो अभिन्न-चारिणं चारणः, गेरा य से नो निपरेजा, एतं गतं नो कषट्ठं एगमयो अभिन्न-चारिणं चारणः । जे तत्थ गेरेहिं अनिदग्गणे एगमयो अभिन्न-चारिणं चरन्ति, से सन्तरा ऐण वा परितारे वा ॥

—अनन्तर सूत्र ४११६॥

बहुत से साधमिक साधक, अभिन्नरूप एकत्र होकर विचरण करना चाहें, तो उन्हें स्थाविर भगवान् की आज्ञा लिये बिना ऐसा करना नहीं कल्पता, हां, स्थाविरों से पूछ कर और वे आज्ञा प्रदान कर दें, तो अभिन्नरूप से एकत्र होकर विचरण करना कल्पता है, यदि वे आज्ञा न दें तो नहीं कल्पता; जो साधक बिना आज्ञा लिये अभिन्नरूप से एकत्र होकर जितने दिन विचरण करें तो उन्हें उतने ही दिन का दीक्षा-छेद वा पारिहारिक तप का प्रायश्चित्त आता है ॥

११. गामाणुगामं दूइजमाणो भिक्खू य जं पुरओ कट्ठं विहरइ, आहच विसुंभेजा, अत्थि या-इ त्थ अन्ने केइ उवसंपज्जणारिहे, से उवसंपज्जि-

हि चारि! एक-दो राति सोन-दारी' वा भी एक वा दो राति सोन-रहित जगन का माता है किन्तु हम मातागन नहीं, जो तापक हमने उपयोग किया है किन्तु हम माता ही दिन का दीक्षा-क्षेत्र न पारिस्थितिक तप का प्रागश्चित्त आता है ॥

इसी प्रकार चातुर्मास काल में ठहरे माताओं का यमवानी साधक काल-धर्म को प्राप्त हो जाए तो उसे भी उपरोक्तानुसार करना कल्याण है जो मार्ग में एक-दो राति उपयोग ठहरे तो उसे उतने ही दिन का दीक्षा-क्षेत्र न पारिस्थितिक तप का प्रागश्चित्त आता है ॥

१२. गामाणुगामं वृद्धजमाणा निगंथी य जं पुरणो काउं विहरइ सा आहन्न वीसुंभेजा, अथि याइत्य काइ अजा उनसंपज्जणारिहा, सा उनसंपज्जियया, नथि याइत्य काइ अजा उनसंपज्जणारिहा, तीये य अण्णो कप्पण असमथे, कप्पइ सा एगाराइयाण पडिमाण जरणं जरणं दिअं अजाओ साहम्मिणीओ विहरंति तरणं तरणं दिअं उवलितण। नो सा कप्पइ तथ विहारवत्तियं वत्थण, कप्पइ सा तथ कारणवत्तियं वत्थण। तंति च एं कारणंसि णिद्वियंसि परो वण्णा 'वसाहि अज्जे ! एगरायं वा दुरायं वा' एयं सा कप्पइ एगरायं वा दुरायं वा वत्थण; नो सा कप्पइ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वत्थण। जा तथ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वसइ, सा सन्तरा छेण वा परिहारे वा ॥

—व्यवहार सूत्र ५।११॥

वासावासं पज्जोसविया निगंथी... (जहा ११) • छेण वा परिहारे वा ॥

—व्यवहार सूत्र ५।१२॥

साधु के प्रकरण में जैसा अर्थ किया गया है उसी प्रकार यहां भी साध्वी के रूप में समझ लेना चाहिये। विशेष इतना है कि 'नो कप्पइ निगंथीए एगाणियाए होत्तए'—वृहत्कल्प सूत्र ५।१५॥ के अनुसार कल्पाचार में समर्थ होते हुए भी और

मन में होने पर भी दूसरी जगह जाते एतकी न जावे, कम-
एक ही दिन कर और मार्ग में एक-एक राति ठहरने की
विधि पाठ्य करके जायें ॥

१३. सावधि-उपपत्त्यु मित्तावसाये सावधं यदुता 'धनो ! ननु यं
 कथयामि ममागमि कथं समुद्धमिषये । मे च समुद्धममिति, समुद्ध-
 मिषये, मे च तौ समुद्धममिति, तौ समुद्धमिषये । अत्रि यादयः कथने
 केन समुद्धममिति, मे समुद्धमिषये; नत्रि यादयः कथने केन समुद्धमम-
 मिति, तौ तौ समुद्धमिषये । अत्रि च तौ समुद्धममिति पदो यदुता 'सुम-
 धि' मे कथने । निविषमिति' मय्य यं निविषममममयः अत्रि केन त्रि
 यादयिषो ना । तौ सावधिरन कथयकथनेन तौ सावध विदमि, मय्यमि
 त्रिणि सावधिं त्रिं ना दमिषो वा ।

— 2774 57 51928

[illegible]

SECRET FOR VISION

आपको क्यामान भलाकर भोग-मन ही भोग करे
 पणः प्राप्तिम भोगि विचारों में रहा हो उन मनुष्य कर्म
 क्यामान भलाः भलाकर भोगि ही प्राप्त भुक्त कर में करे कि
 है भोगों में भोगे भोग कर भोगे पर हम पर पर भुक्त की
 भुक्तभोगि भोगा भोग कर भोग में भोग कर भोग । भोगभोग
 भोग भोगभोग भोगभोग भोगि भोग की भोगभोग भोग । भोग भोग
 भोग भोगभोग ही भोग भोग भोग भोग भोग भोग भोग भोग ।
 भोग भोग भोग भोग भोग भोग भोग भोग भोग भोग भोग भोग
 भोग भोग भोग भोग भोग भोग भोग भोग भोग भोग भोग भोग
 भोग भोग भोग भोग भोग भोग भोग भोग भोग भोग भोग भोग
 भोग भोग भोग भोग भोग भोग भोग भोग भोग भोग भोग भोग

[illegible][illegible]

(U) [REDACTED]

— १९५५ मध्ये मृत्यु झाला —

— 07898 [?] 814, 941

[illegible]

नमः प्रायश्चित्त के श्रद्धालु—

नवमें प्रायश्चित्त के अर्थपरकारी—
 तमः कल्पवृक्षः पञ्चमः तं दत्तः—तद्विषयः तं दत्तः १,
 तद्विषयः तं दत्तः २, तद्विषयः तं दत्तः ३।
 तमः कल्पवृक्षः पञ्चमः तं दत्तः—तद्विषयः तं दत्तः १,
 तद्विषयः तं दत्तः २, तद्विषयः तं दत्तः ३।

—शालीत मृग ३१/१२/३१, —वृहस्पति मृग ३१/१२/३१

—अप्राप्त मृत शरीर २॥, —वृद्ध ३॥
१. स्वधर्मो = स्वधर्म के साथ माणवी के भंडोपकरण वन्य
पक्ष, वन्य पक्ष, वन्य वन्य वन्य की बोरी करने वाली—विना
पूर्व में जाने साधक को 'अनवस्थान' नामक नवम प्राय-
श्चित्त आता है।

2. परमार्थी = परमार्थ प्रदाता अन्यत्वीर्षी साधु, श्रमणा स्वमत तथा परमत दोनों प्रकार के गृहस्थों के भण्डोपकारण को कराने वाले साधक को 'अनवस्थाप्य' प्रायश्चित्त माता है।

३. परस्पर में मारामारी और जड़ाई करने वाले [अथवा अष्टांग निमित्त की प्रसूया करने वाले] साधक को नयम 'अनवस्थाप्य' प्राग्विचित्र आता है। (बताया हुआ ज्योतिष, धर्म की श्रद्धा सब गूढ़ पर-धर्म व पर-पद में)

१. साधु-धर्म की श्रद्धा सब गृहस्थ पर-धर्म व पर-पद में आते हैं।

१. साधु-धर्म की श्रवणा से
है।
२. गृहकल्ययन ग्रन्थ पृष्ठ ४७॥ में पूज्य श्रीमोलक श्रुति जी महाराज ॥

नणित आदि में नृदि रह जाने पर पूरा न जाने तो मायुगों की शीर जिन-जायन को निम्ना होती है)

आठवें 'मूल' प्रायश्चित्त में दोष प्रकट नहीं होता योर उस नवम अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त में दोष प्रकट रूप में (openly, in public) होता है उस लिए उसे लोगों के समक्ष गृहस्थ का वेप पहिना कर फिर नई दीक्षा दी जाती है । 'यादि' शब्द से प्रकट रूप में झूठ बोलने वाले, कुशील सेवन करने वाले आदि प्रायश्चित्तियों को भी यह 'अनवस्थाप्य' नवम प्रायश्चित्त दिया जाता है ॥

१०. पाराश्रिक—

तीर्थकरादीनां बहुश आशातनाकारिणि, नृपचातके, नृपाग्रमहिषीप्रतिसेवके, स्वपरपक्ष-कपाय-विषय-प्रदुष्टे, स्त्या-नर्द्धि निद्रावति पाराश्रिकप्रायश्चित्तम् । स त्वव्यक्तलिङ्गधारी जिनकल्पिवत् क्षेत्राद्वहिः स्थाप्यते द्वादशवर्षाणि, यदि प्रभा-वनां करोति तदा शीघ्रमेव प्रवेश्यते गच्छे शुद्धत्वात् ॥

नई दीक्षा एवं गृहस्थ-वेप के अतिरिक्त जो दीर्घ समय (वारह मास उत्कृष्ट वारह वर्ष) तक विधि रूप से रहकर जो प्रायश्चित्त का पार पाता है उसे पाराश्रिक नामक दसवां प्रायश्चित्त कहते हैं ।

जो दोष, जितना प्रकट-रूप में होता है उसका प्रायश्चित्त भी उतना ही प्रकट-रूप में दिया जाता है । यदि ऐसा न किया जाए तो अपने तथा बाहिर के लोगों में यह अपवाद फैल जाए कि 'इन में तो ऐसे ऐसे कुकर्म करने वाले भी छिपे बैठे हैं ।'

इस प्रकार इस वेप की एवं जिन-शासन की निन्दा होती है। मतः जो दोष जितने अंश में प्रकट-रूप हो, उसका प्रायश्चित्त भी उतने ही प्रकटरूप में होना चाहिए। इसलिए दसवें प्रायश्चित्त का अधिकारी साधुवेप छोड़ देता है और गृहस्थ का कोई विशिष्ट वेप बनाकर (मस्तक पर चार अंगुल प्रमाण का वस्त्र बांध कर) बारह मास और उत्कृष्ट बारह वर्ष पर्यन्त साधु के सव नियमों का यथाविधि पालन करता हुआ और ग्रामानुग्राम विचरण करता हुआ लोगों के द्वारा अनादर अपमान को समभाव-पूर्वक सहन करता हुआ उतने समय का पार पाता है, उस अवधि में यदि वह जिन-शासन की प्रभावना करे तो समय घटा भी दिया जाता है, इस प्रकार समय पूरा करके वह नई दीक्षा धारण करता है ॥

दसवें प्रायश्चित्त के अधिकारी—

तत्रो पारंशिया पण्यत्ता तंजहा—दुष्टे पारंशिण १, पमत्ते पारंशिण २, अण्यमण्यं करेमाणे पारंशिण ३॥

—ठाण्णंग सूत्र ३।४।१२॥, —बृहत्कल्प सूत्र ४।२॥

१. दुष्ट दो प्रकार के होते हैं, कपायदुष्ट और विपर्य-दुष्ट। कपायदुष्ट के दो भेद—स्वपक्ष-कपायदुष्ट और परपक्ष-कपायदुष्ट। स्वपक्ष-कपायदुष्ट के भी पाञ्च भेद प्रतिपादन किये गए हैं—

पंचहिं ठाणेहिं समणे निग्गंथे साहम्मियं पारंशियं करेमाणे णाङ्कमइ तंजहा—कुले वसइ कुलस्स भेयाण् अन्धुट्ठेत्ता भवइ, गणस्स भेयाण् अन्धुट्ठेत्ता भवइ, हिंसपेही, छिदपेही, अभिक्खणं अभिक्खणं पत्तिणाण् तेणाइ पउत्ता भवइ ॥ —ठाण्णंग सूत्र ५।१।१४॥

(क) जिस कुल में रह रहा है, उसी में फूट डलवा कर

३. साधु साधु के साथ और साध्यों साध्यों के साथ
सत्पर विषय संगम करे ।

इन सब को दसवां 'पाराश्रिक' प्रायश्चित्त सेना होता है ॥

तीर्थकर देव की, वैयसि-प्रकथित मारुत एवं जिन-धारान की
बहुत बार आराधना करने वाला भी इस दसवें पाराश्रिक
प्रायश्चित्त का अनुष्ठान कर अपनी आत्मा को शुद्ध बना
सकता है ॥

कृष्ण गोतायों की धारणा है कि नवम प्रायश्चित्त उपाध्याय
को तथा दशम पाराश्रिक प्रायश्चित्त आचार्य को दिया
जाता है ।

किसी का कहना है कि ये दोनों प्रायश्चित्त, चौदहपूर्व का
ज्ञान और प्रथम संहनन न होने से तप की अपेक्षा व्यवच्छेद
हो चुके हैं, और कोई कहता है कि यह दसवां पाराश्रिक
प्रायश्चित्त पूर्णतया विच्छेद है ।

किन्तु पृष्ठ ५७ में व्यवहार सूत्र २।२२, २३ के अनुसार
अपवाद रूप में नवमें तथा दशमें प्रायश्चित्त की आठवां मूल
प्रायश्चित्त भी दे दिया जाता है ॥

एवं सदयं दिज्जति जेणं सो संजमे धिरो होति ।

न य सच्चहा न दिज्जति अण्वत्थपसंगदोसातो ॥

—व्यवहार सूत्र उद्देश-१०

भाष्यगाथा ३८०॥

तालिका

- सामान्य प्रमाद की कोटियाँ
- (१) अतिक्रम का प्रायश्चित्त 'आलोचना' ।
 - (२) व्यतिक्रम का प्रायश्चित्त 'प्रतिक्रमण' (मिथ्य दुष्कृत देना) ।
 - (३) अतिचार व सामान्य प्रमाद के अनाचार का प्रायश्चित्त 'तदुभय' ।
 - (४) उपयोग भङ्ग के अनाचार का प्रायश्चित्त 'विवेक' ।
 - (५) केवल काया, केवल वचन व केवल मन के अनाचारों का प्रायश्चित्त 'व्युत्सर्ग' ।

- विशिष्ट प्रमाद की कोटियाँ
- (६) विशिष्ट प्रमाद से उद्भूत अतिचार व अनाचारों का प्रायश्चित्त 'तप' ।
 - (७) कुछ जान-बूझ कर सेवित अनाचार का प्रायश्चित्त 'छेद' ।
 - (८) सर्वथा जान-बूझ कर आसेवित अनाचार का प्रायश्चित्त 'मूल' ।
 - (९) प्रकट रूप से जान-बूझ कर सेवित अनाचार का प्रायश्चित्त 'अनवस्थाप्य' ।
 - (१०) महान् अनर्थोत्पादक जान-बूझ कर सेवित अनाचार का प्रायश्चित्त 'पाराञ्चिक' ॥

ये प्रायश्चित्त जिन २ में हो सकते हैं वे इस प्रकार हैं—
 पुलाक निर्ग्रन्थ में छः प्रायश्चित्त—आलोचना १, प्रतिक्रमण २, तदुभय ३, विवेक ४, व्युत्सर्ग ५, और तप ६ हो सकते हैं ।

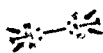
तात्पर्य

न और प्रतिपेयना-गुणोन्नि में दस ही प्रायश्चित्त हो
 । परन्तु जो जिन-कल्पी हैं उनमें आदि के आठ ही हो
 हैं।
 तत्रेण्य में दो प्रायश्चित्त हो सकते हैं, आलोचना और
 क।
 स्नातक में केवल एक विवेक प्रायश्चित्त होता है ॥

आमायिक-चारित्री में छेद और भूल को छोड़ कर दोष
 आठ प्रायश्चित्त हो सकते हैं। किन्तु जो नामायिक-चारित्री
 जिन-कल्पी हैं उनमें आदिन छः प्रायश्चित्त हो हो सकते हैं।
 छेदोपस्थापनीय-चारित्री में दस ही प्रायश्चित्त हो सकते
 हैं किन्तु जो छेदोपस्थापनीय जिनकल्पी हैं उनमें आदि के आठ
 प्रायश्चित्त ही हो सकते हैं।

परिहारविमुक्ति-चारित्री में आदि के आठ और जो परि-
 हारविमुक्ति-चारित्री जिन-कल्पी हैं उसे छेद और भूल को छोड़
 कर आदि के छः प्रायश्चित्त हो सकते हैं।

सूक्ष्मसम्पराय-चारित्री और यथान्यात-चारित्री में दो
 प्रायश्चित्त हो सकते हैं—आलोचना और विवेक ॥



पायच्छित्ते असंतमि,
 चरित्तपि ण वट्ठती ।

चूलिका

प्रायश्चित्त दो प्रकार के होते हैं--कपिय और दपिय ।
आलोचना प्रायश्चित्त कपिय प्रायश्चित्त है, जेप नव
प्रकार के प्रायश्चित्त सब-के-सब दपिय प्रायश्चित्त है,
१. कल्मसीय, आचरण करने योग्य कार्यों का आलोचना-
प्रायश्चित्त, अतिक्रम की संभावना की अपेक्षा से है ।

२. तं पुण्य होज्जा सेविय दप्पेणं अहव होज्ज कप्पेणं ।
दप्पेण दसविहं वू इण्णमो बुच्छं समासेणं ॥
दप्प व अकप्प निरालं व वियत्ते अपसत्थ वीसत्थो ।
अपरिच्छ अरुडजोगी अण्णायानी य गिस्संको ॥

—व्यवहार सूत्र उद्देश १० भाष्यगाथा ६३३, ६३४ ॥

—द्वों निष्कारणं धावन-वल्गन-वीरयुद्धादिकरणं १ । अकल्पोऽ-
परिणत-पृथ्वीकायादिग्रहणमगीतार्थानीतोपधि-शय्यादाराद्युपभोगश्च २ ।
निरालम्बो ज्ञानाद्यालम्बनरहितप्रतिसेवनाको ३ । वियत्तेति पदैकदेशे
पदसमुदायोपचारात्यकृत्यः संस्तरन्नपि सन्नकृत्यं प्रतिसेव्य त्यक्चारात्र
इत्यर्थः ४ । अप्रशान्तो बलवर्णादिनिमित्तं प्रतिसेवी । ५ विश्वस्तः
स्वपक्षतः परपक्षतो वा निर्भयं प्राणातिपातादिसेवी ६ । अपरीक्षी
युक्तायुक्तपरीक्षाविकलः ७ । अकृतयोगी अगीतार्थः । त्रीन् वारान कल्प-
मेपणीयं चापरिभाव्य प्रथमवेलायामपि यतस्ततोऽल्पानेपणीयमपि
आही ८ । अननुतापी आवादपदेन कायानामुपद्रवेऽपि कृते पश्चात् अनु-
तापरहितः ९ । निःशङ्को निर्दयः इहपरलोकाङ्कारहित इत्यर्थः १० ॥
एयं दप्पेण भवे इण्णमन्नं कप्पियं मुणोयव्वं ।
चउवीसई विहारं तमहं बुच्छं समासेण ॥

देष्य प्रायश्चित्त ज्ञान-विषयक, दर्शन-विषयक श्रीर चारित्र-

दसण-गण-चरिते तत्र-पवयण-समिति-गुत्तिहेउ वा ।

साहम्मियवच्छल्लेण चावि कुलतो गणस्स वा ॥

संघस्सा-ऽऽयरियस्स य असहुस्स गिलाण-वाल-बुद्धस्स ।

उदय-गि-चोर-सावय-भय-कन्तारा-ऽऽवत्ती-वसणे ॥

—व्यवहार सूत्र उद्देश्य १० भाष्य गाथा ६३५, ६३६, ६३७ ॥

—दर्शने दर्शनप्रभावकं शास्त्रग्रहणं कुर्वन्संस्तरणे १। शाने सूत्रमर्थे चाधीयमानो असंस्तरणे २। चारित्रे अनेपणादोपतः स्त्रीदोषतो वा चारित्ररक्षणाय ततः स्थानोदन्यत्र गमने ३। तपसि विकृष्टतपोनिमित्तं धृतवानादि ४। प्रवचनरक्षादिनिमित्तं विष्णुकुमारादिरिव धैक्रियकुर्वाणादि ५। समितौ ईर्यासमित्यादिरक्षणनिमित्तं चक्षुसः सावद्यचिकित्साकरणादि ६। गुप्तौ भावितकारणतो विकटपाने कृते मनोगुण्यादि रक्षणनिमित्तमकल्प्यादि ७। साधर्मिकवात्सल्यनिमित्तं ८। कुलतः कार्यनिमित्तं ९। एवं गणकार्यनिमित्तं १०। संघकार्यनिमित्तं ११, आचार्यनिमित्तं १२, असहनिमित्तं १३, ग्लाननिमित्तं १४, प्रतिपिद्ध-वालदीक्षितसमाधिनिमित्तं १५। प्रतिपिद्धवृद्धदीक्षितसमाधिनिमित्तं १६, उदके जलप्लवे १७, अग्नी दवाग्न्यादौ १८, चोरे शरीरोपकरणापहारिणि १९, श्रापदे हिंसा व्याघ्रादावापतति यद्वृत्तारोहणादि २०। तथा भये म्लेच्छादिसमुत्थे २१। कान्तारे अद्यमानभक्तपानेऽप्यनि २२, आपदि द्रव्याद्यापत्तु २३। व्यसनं मद्यमान-नीतगानादिविषये पूर्वाभ्यासतः प्रवृत्तिः २४। तत्र यद्येतनया प्रतिसेवते स कल्पः। एतदेवाह—

एयन्तरागाढे दंसणनाणे चरणसालंघो ।

परिसेविउं कयाई होइ समत्थो पसत्थेसु ॥६३८॥

—एतेषामनन्तरोदितानामन्यतरस्मिन् आगाढे (आवश्यकै) समुत्थित-दर्शनज्ञानचरणसालम्बः प्रतिसेव्याकल्प्यप्रतिसेवनां कृत्वा कदाचित्प्र-

जो साधक इन प्रायश्चित्तों को अंगीकार एवं स्वीकार नहीं करता अपितु अपने दोषों को बढ़ाता ही चला जाता है, तो उस से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया जाता है जैसे कि —

पंचाहिं ठालेहिं समणे निगगन्हे साहम्मियं संभोइयं, विसंभोइयं करे-
माणे णाइक्कमइ तं जहा—सकिरिय-ट्ठाणं पडिसेवित्ता भवइ, पडिसेवित्ता णो
आलोपइ, आलोएत्ता णो पट्टिवेइ, पट्टिवेत्ता णो णिव्विसइ, जाइं इमाइं धेराणं
द्विइ-प्पकप्पाइं भवंति ताइं अइयंचिय अइयंचिय पडिसेवेइ से 'हन्द' !^१ हं
पडिसेवामि किं मे धेरा करिस्संति' ।

—ठाणांग सूत्र ५।१।१४॥

अर्थात् जो दोष का सेवन करता है, सेवन करके उसकी आलोचना नहीं करता, आलोचना करने पर गुरुजन जो प्रायश्चित्त देवें वह अङ्गीकार नहीं करता, अंगीकार करके भी उसे उतारता नहीं और स्थविर भगवन्तों ने जो मर्यादाएं चांधी है उन्हें बारम्बार तोड़ता है और कहता है कि 'हां ! मैं तो ऐसे ही करूंगा, देखूंगा स्थविर मेरा क्या विगाड़ लेंगे' । ऐसे व्यक्ति के सम्भोग काट दिए जाते हैं ।

इस प्रकार के जो प्रत्यनीक व्यक्ति हैं, उनके साथ सम्भोग नहीं रहे जाते जैसे कि—

अर्थात् शीघ्र तप करवाना), ठविया (स्थापिता अर्थात् स्थापन कर रखना), कसिणा (कुत्ता अर्थात् क्रोध-रहित तप करना वह पूर्णतप है), अकसिणा (अकुत्ता अर्थात् क्रोध सहित तप करना वह अपूर्ण तप है), हाडहडा (दृढता अर्थात् अवस्था एवं शक्ति देखकर दिया गया तप ॥

—ठाणांग सूत्र ५।२।१४॥

१. हन्द च गहाणार्थे ॥८२।१८१॥ —हेम-व्याकरण ॥

नीक में सूत्र, अर्थ और तदुभय दोनों प्रकार के प्रत्यनीक माने जाते हैं।

तपस्वी, रोगी और शैक्ष का अनुकम्पा-प्रत्यनीक तथा इहलोक, परलोक एवं तदुभयलोक का गति-प्रत्यनीक—ये छः प्रकार के प्रत्यनीक तो अपनी हानि तक सीमित रहते हैं परन्तु उपरोक्त नव प्रकार के प्रत्यनीक तो अपनी हानि करते हुए गच्छ की भी हानि करते हैं अतः उनके साथ गच्छ के सम्भोग काट दिये जाते हैं ॥

उपरोक्त प्रसङ्गों में तो, प्रायश्चित्त न होने तक १२ प्रकार के सम्भोगों में से कुछ सम्भोग काट दिये जाते हैं किन्तु जो प्रायश्चित्ती आगमानुसार प्रायश्चित्त को अङ्गीकार ही न करे, उसे तो गच्छ-बाहिर ही किया जाता है अर्थात् उसके साथ गच्छ का कोई सम्भोग नहीं रहता जैसे कि कहा है—

मित्रं य अहिगरणं कट्टं तं अहिगरणं अविश्रोसवेत्ता—नो से कप्पइ गाहा-
वड्कुलं भत्ताणं वा पाणाणं वा निक्खमित्तणं वा पविसित्तणं वा, नो से कप्पइ
बहिया वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा निक्खमित्तणं वा पविसित्तणं वा, नो से
कप्पइ गामाणुगामं दूद्वज्जित्तणं वा, गणाओ गणं संकमित्तणं, वासावासं वा
वत्थणं । जत्थेव अप्पणो आयरिय-उवज्जायं पासेज्जा बहुस्सुयं यवभागं,
कप्पइ से तस्सन्तिणं आलोणत्तणं, पडिक्कमित्तणं, निंदित्तणं, गरहित्तणं,
विउट्ठित्तणं, विसोहित्तणं, अद्भुद्वित्तणं, अहारिहं पायच्छित्तं तवोक्कमं पडि-
वज्जित्तणं । से य सुएणं पट्ठविणं, आइयच्चे सिया; से य सुएणं नो पट्ठविणं
नो आइयच्चे सिया । से य सुएणं पट्ठविज्जमाणे नो आइयइ, से निज्ज-
हियच्चे सिया ॥

—बृहत्कल्पसूत्र ४।२५॥

कोई साधक किसी से क्लेश कर बैठे, जब तक वह क्लेश को शान्त करके क्षमा-याचना न कर ले, तब तक गोचरी को

पाना, पादपौरो को चान्दा, मग्नपाद चान्दा, विपुल चान्दा, दूसरे मग्नपौरो को मज्जीकार करना और प्रायश्चित्त का प्रतीक होना चान्दा को सबसे बड़ा (जिसने इस पापी को अपने अपने दिन का दोषाचार न प्रायश्चित्त करा) यद्यपि जरा उमके आचार्य, उग्रपाद, मज्जीकार और पायश्चित्त-विधि के जाता हों, वहाँ जा कर आलोचना, प्रतिक्षण, निरन्ता, मर्मा, विउद्वेग और आत्म-विनोदना करे, आगे के सिधे ऐसा न करने का मन में दृढ संकल्प करे और किये हुए का यथायोग्य निवेदनानुसार प्रायश्चित्त मज्जीकार करे । यदि प्रायश्चित्त पश्चात् के कारण, आगमानुसार न दिया जाए तो प्रायश्चित्त मज्जीकार न करे, और जो साधक ममानुसार दिये गए प्रायश्चित्त को मज्जीकार न करे तो उसे विसंभोगी घोषित करके गन्ध-बाहिर कर दिया जाना चाहिये ॥

जो तृतीयवार कपट का आचरण कर सभा में प्रायश्चित्त पा चुका हो और चतुर्थवार पुनः कपटाचरण करे तो उसे भी विसंभोगी गन्ध-बाहिर कर दिया जाता है —

निर्दिष्टं शोणितं समणो निगम्यो साहमियं संभोद्यं, विसंभोद्यं करे-
माणो नाद्वकमद् तं जरा—सहं वा ददृष्टुं, सद्भिद्यस्स वा निसम्म तच्च
मोसं आउहद्, चउत्थं नो आउहद् ॥ —शालांग सूत्र ३३।६॥

किसी ने दोष-स्थान सेवन किया, उसकी शुद्धि करने के हेतु उससे स्वीकार करवा कर प्रायश्चित्त देने के लिए उससे पूछा गया, उसने साफ़ इन्कार कर दिया, यदि प्रायश्चित्त देने वाले ने अपनी आँखों से उसका दोष-सेवन देखा है, तो उसे पूरा प्रमाण देकर प्रायश्चित्त देवे एवं शुद्ध करे । दोष-सेवन का प्रायश्चित्त और कपट कर भूठ बोलने का प्रायश्चित्त

चूलिका

पृथक् पृथक् देकर और फिर दोनों को मिलाकर संजोयणा-प्रायश्चित्त दिया जाए। यदि उसे दोष सेवन करते हुए को स्वयं न देखा हो तो जिस विश्वास-पात्र ने अपनी आँखों देखा हो, उससे सुन कर उस दोषों को प्रायश्चित्त दिया जाए।

एक बार तो ऐसा कर दिया गया परन्तु उसने दूसरी बार फिर दोष का सेवन किया और पूछने पर भी फिर कपटाचरण कर झूठ बोला, तब भी उपरोक्त प्रकार से उसे प्रायश्चित्त दिया जाए।

यदि वह तीसरी बार भी ऐसा करे तो उपरोक्तानुसार उसे भा के बीच संजोयणा-प्रायश्चित्त मिले।

यदि वह ढीठ चतुर्यं वार पुनः दोष-सेवन करे और पूछे जाने पर माया करके झूठ बोले तो पूरा प्रमाण मिल जाने पर उसे कोई प्रायश्चित्त देने की आवश्यकता नहीं अपितु उसे विसंभोगी कर गन्ध से बाहिर कर दिया जाता है।

कौन साधक अपने कपटाचरण को छिपाता है और कौन उसकी सम्यक् प्रकार आलोचना करता है इस विषय में सूत्र-कार प्रतिपादन करते हैं—

तिहिं ठाण्हिं मायी, मायं कट्ठुं सो आलोण्णजा, सो पडिक्कमेज्जा,
सो शिंदेज्जा, सो गरहेज्जा, सो विउट्ठेज्जा, सो विसेहेज्जा, सो अक्खयाप
अन्धुट्ठेज्जा, सो अहारिहं पायच्छित्तं तवोक्कमं पडिक्कमेज्जा तं जहा—
अकरिंखु वाहं, क्खेमि वाहं, करिस्सामि वाहं ॥

—आपांग सूत्र ३।३।१॥

मायावी, कपटाचरण कर तीन कारणों से गुरु-साक्षी में आलोचना नहीं करे, मिथ्यादुष्कृत न दे, नसे बुरा न समझे

अग्निमें डुबा न करे, चांगे के लिए न करने का संकल्प न करे, सीर अतिचारों की शुद्धि कर दयायोग्य तप-प्रायश्चित्त ग्रहण न करे । जैसे कि—

(१) मैंने स्वयं यह कार्य किया, अब मैं इसकी कैसे विन्यास करूँ ।

(२) यह कार्य मैं अब भी कर रहा हूँ, इसको मैं कैसे हुआ करे ।

(३) यह कार्य मैंने अब भी करना है, इसलिए इसका कैसे प्रायश्चित्त लू ।

जिसे स्मृतिमें मानी, माघे ऋतु को आश्विमेय का प्रतिक्रमेय काव को प्रतिश्रमेय न चतुःश्रमेय वा मे गिया, अश्विमेय वा मे गिया स्मृतिप्रमाण मे गिया ।

५०. यदि मे अपने पाप को भूल कर गया तो मेरी अतिविचारों (१) मेरा यत्नोपर होना और (२) नाम मेरी अतिविचारों के अतिविचारों न करण ।

जिसे स्मृतिमें मानी, माघे ऋतु को आश्विमेय काव को प्रतिश्रमेय काव को प्रतिश्रमेय, अश्विमेय वा मे गिया, अश्विमेय वा मे गिया स्मृतिप्रमाण मे गिया ।

५१. यदि मे अपने पाप को भूल कर गया तो मेरी अतिविचारों (१) मेरा यत्नोपर होना और (२) नाम मेरी अतिविचारों के अतिविचारों न करण ।

जिसे स्मृतिमें मानी, माघे ऋतु को आश्विमेय काव को प्रतिश्रमेय काव को प्रतिश्रमेय, अश्विमेय वा मे गिया, अश्विमेय वा मे गिया स्मृतिप्रमाण मे गिया ।

५२. यदि मे अपने पाप को भूल कर गया तो मेरी अतिविचारों (१) मेरा यत्नोपर होना और (२) नाम मेरी अतिविचारों के अतिविचारों न करण ।

जाती से आलोचना करते हैं, निष्ठादुष्टता ऐसे हैं, उसे गुप्त समझते हैं, उस कष्टाचरण में भुजा करते हैं, आने को न करने का एक सङ्कल्प मन में धारण करते हैं और सबेरे हुए यमिनासों को बुद्धि कर उस सब दया-योग्य प्रायश्चित्त ग्रहण करते हैं—

(१) यदि मैं अपना पाप गुप्त रखूँगा तो वह कभी गुप्त न रह सकेगा फिर लोगों में अधिक निन्दा का पाप वर्णन ।

(२) नाया-नाय से मृत्यु पाकर दुर्गति में जाना पड़ेगा ।

(३) वहाँ आयु समाप्त करके फिर मनुष्य लोक में श्रेष्ठ कुलों में जन्म धारण करना पड़ेगा ।

निहिं श्लोहिं मापी, मायं कद्रु आलोचना जाय पश्यिजेता सं जहा—
अनादिन्य सं अस्ति मोमे पश्ये भयद्, उपपाय पश्ये भयद्, आपाहं पश्ये भयद् ।

(१) अपनी भूल मानने से और उसका पश्चात्ताप करने से इस लोक में प्रगता होती है कि 'घन्य है जो अपना जन्म सुधार रहा है ।'

(२) आलोचना करने से जिनाय का आराधक होता है और मृत्यु के पश्चात् इन्द्र के सामानिक देव आदि की पदवी पाता है ।

(३) वहाँ से आयु पूर्ण कर फिर श्रेष्ठ कुलों में जन्म धारण करके अपना कल्याण करता है ।

निहिं श्लोहिं मापी, मायं कद्रु आलोचना जाय पश्यिजेता सं जहा—
आपाहं पश्ये भयद्, उपपाय पश्ये भयद्, आपाहं पश्ये भयद् ॥ —शार्ङ्ग मूय ३।३।१॥

उत्तम जीव अपने ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र्य की वृद्धि के लिये अपने कष्टाचरण की आलोचना करके उसका प्रायश्चित्त श्रंगी-कार करते हैं ॥

आयिरिय-उद्यम्भाणं गणंसि श्राणं वा धारणं वा नो सम्मं पडंजिता भवइ १,
आयिरिय-उद्यम्भाणं गणंसि श्राणायणियाणं किट्ठकम्मं वेणइयं नो सम्मं पडं-
जिता भवइ २, आयिरिय-उद्यम्भाणं गणंसि जे सुयपज्जवजाणं धारित्ति ते काले
नो सम्ममणुपवादेता भवइ ३, आयिरिय-उद्यम्भाणं गणंसि सगणियाणं वा
परगणियाणं वा निग्गंयोणं (सद्धिं) वहिलेस्से भवइ ४, भित्ते-शाट्ठगणे वा से
गणाओ अयकमेज्जा, तेसिं संगहोयग्गहट्ठयाणं गणावरकमणे परणत्ते ५ ॥

—ठाणांग सूत्र ५।२।१७॥

(१) जिस गच्छ के आचार्य उपाध्याय अपने गण में आज्ञा=स्पर्शना, धारणा=श्रद्धा और प्ररूपणा अथवा आज्ञा=विधिरूप आदेश, धारणा=निषेधरूप आदेश सम्यक् प्रकार नहीं देते और गण से पालन नहीं करवाते, जिसके मन में जो आए सो कर गुजरे; उत्सूत्र प्ररूपणाएं चलती हों और विपरीताचरण किये जाते हों, कोई पूछने वाला न हो कोई रोकने वाला न हो, जहां सारणा वारणा न हो तो ऐसे गच्छ को छोड़ देना चाहिये ।*

(२) जिस गच्छ के अधिकारिगण अपने गण में छोटों से बड़ों का आदर-मान और विनय-भक्ति नहीं करवाते, जिस गच्छ में छोटे बड़े का कोई लिहाज नहीं सर्वत्र आपा-वापी व्यापी हो तो ऐसे गच्छ को छोड़ देना चाहिये ।

(३) जिस गच्छ के अधिकारिगण साधकों को शास्त्र-स्वाध्याय नहीं करवाते तो उस गच्छ को छोड़ देना चाहिये ।

(४) जिस गच्छ के अधिकारिगण साध्वियों से (स्त्रियों से) अनुचित सम्पर्क रखते हों तो उस गच्छ को छोड़ देना चाहिये ।

* जहिं नत्थि सारणा वारणा य, पडिचोयणा या गच्छंमि ।

सो उ अगच्छो गच्छो, मोत्तव्वो संजमत्थीहिं ॥

कतिपय—क्या सम्भोग

(७) सम्मुखान—सामने खोले हुए का, आसन स्वागत होकर सम्भोग करना सम्मुखान-सम्भोग है।

(८) कृतिकर्म—कन्दना करना कृतिकर्म-सम्भोग है।
(९) वैमायुत्य—आहार-गानी, वस्त्र-मात्र, पीठ-फलक आदि साकर देना, उच्चार-प्रश्रवण परिष्कारण करना और किसी कर्म को शान्त करने में सहायता देना इत्यादि सब वैमायुत्य-सम्भोग माना जाता है।

(१०) समोत्तरण—एक भक्तान में उद्धरना समोत्तरण-सम्भोग है।

(११) निपद्या—एक कमरे में आसन लगाना, निपद्या-सम्भोग है।

(१२) कथा-प्रबन्ध—एक स्थान बैठ कर परस्पर वार्तालाप, कथा-प्रबन्ध-सम्भोग होता है।

इन सम्भोगों की दस कोटियां होती हैं—

(१) प्रथम कोटि में सब-के-सब सम्भोग खुले रहते हैं।
(२) दूसरी कोटि में भक्तपान-सम्भोग, दिव्यप्रदान-सम्भोग और वन्दना का सम्भोग—इन तीनों को छोड़ कर शेष नव सम्भोग खुले रहते हैं।

(३) तीसरी कोटि में उपवि-सम्भोग और वन्द हो जाता है और चार को छोड़ कर शेष आठ खुले रहते हैं।

(४) चौथी कोटि में अञ्जलिप्रग्रहण सम्भोग और वन्द होकर कुल ५ बन्द होते हैं और सात खुले रहते हैं।

(५) पांचवीं कोटि में निकाय वन्द हो — ६ बन्द

परिचित—वाराह सम्भोग

इसे प्रसिद्ध कथा-प्रदान-सम्भोग की शीर्षक दोर ११
रहते हैं।

(२) अन्यसम्भोगी—अन्यसम्भोगी के साथ भक्तान्न
ग्नो, निपाय-प्रदान सम्भोग और कृतिकर्म सम्भोग — ये
तीन सम्भोग कम-ज्यादा बन्द रहते हैं।

(३) पातलादि पञ्चगुणील—इनमें उपरोक्त तीन तथा
उपमि सम्भोग अज्ञानविप्रमृष्ट, निपाय और अन्वुत्थान—इनके
गन्ध-रस को छोड़ कर विनिष्ट-रूप से ये चार बन्द होकर
३७ बन्द रहते हैं परन्तु गन्ध-रस और चारित्र-गुणील के
तिरिक्त दोष तीन से श्रुत-सम्भोग, निपाय-सम्भोग और कथा-
केन्द्र से श्रुत-सम्भोग, निपाय-सम्भोग और कथा-
प्रवचन-सम्भोग—ये तीन और बन्द होकर कुल १० सम्भोग
बन्द होते हैं और चारित्र-गुणील से समोसरण-सम्भोग और
कुल ११ सम्भोग बन्द होते हैं केवल अधिक-रणापसमरूप
वैवायव्य-सम्भोग उचित सीमा तक गुला रहता है और नैप
सव-नै-सव बन्द होते हैं।

(४) विसम्भोगी—विसम्भोगी दो प्रकार के होते हैं एक
प्रायश्चित्ती और दूसरा अप्रायश्चित्ती अर्थात् जो श्रुतानुसार
प्रायश्चित्त न लेता हो और वह जो किसी दोष का सेवन
करते हुए तीन बार प्रायश्चित्त ले चुका हो और फिर चतुर्थ
बार उसी दोष का सेवन करके प्रायश्चित्त योग्य न होकर
बाहिर किया गया हो, ऐसे अप्रायश्चित्तियों और प्रायश्चित्तियों,
दोनों प्रकार के विसम्भोगियों से कोई सम्भोग नहीं होता।
प्रायश्चित्ती, प्रायश्चित्त कर चुकने पर सम्भोग योग्य होता है।
(५) संयतीवर्ग—साध्वियों से, उत्सर्ग और अपवाद

अभिमत

“हम सुशील कैसे बनें ?”

यह सुन्दर कृति साधु-जीवन को उन्नत करने में बहुत ही उपयोगी और लाभप्रद है। कुछ ही पृष्ठ पढ़ने से हृदय, ऐसी बहुमूल्य कृति के लिये लेखक के श्रम को वार २ सराहने लगा। आज के युग में ऐसे पुस्तक-रत्नों की और भी अधिक आवश्यकता है। नवदीक्षित युवा मुनियों को तो इस से अनगिनत लाभ हो सकते हैं जो कि उन्हें संसार में पूज्य ही नहीं—आदर्श-मुनि भी सहज में ही बना सकते हैं। लेखक के पुनीत अथ च सराहनीय परिश्रम को यदि वे सार्थक करेंगे तो लेखक को ही नहीं, मुझे भी महान् हर्ष हुए बिना न रहेगा। ऐसी उत्तम कृति को लिखने में महान् श्रम के लिये लेखक को पुनः पुनः धन्यवाद ॥

—चन्दन मुनि
पट्टी (भमृतसर)

विषयक वार्तालापक कथाप्रवन्ध-सम्भोग के अतिरिक्त और कोई सम्भोग नहीं होता ।

(६) गृहस्थवर्ग—गृहस्थियों से, अपवादरूप वाचना व छोड़कर, विधिपूर्वक पृच्छना आदि श्रुतसम्भोग के अतिरिक्त आरम्भ के १० सम्भोग नहीं होते, अर्थात् पृच्छनादि श्रुत सम्भोग, निषद्या-सम्भोग, और वार्तालापादि कथा-प्रवन्ध सम्भोग—ये तीन सम्भोग होते हैं । गृहस्थ-स्त्रियों से ये तीनों भी नहीं होते । पुरुषों में भी योग्य गृहस्थों से होते हैं सामान्यतया भगवान् का आदेश है कि 'गिही संथवं न कुज्ज कुज्जा साहूहिं संथवं'—दशवैकालिक सूत्र ८।५३॥ तथा जि स्त्री-पुरुषों के संसर्ग से संयमी-जीवन और ज्ञान-ध्यान को क्षपण होती हो उन नर-नारियों का सम्पर्क छोड़ दे चाहिये 'जेण पुण जहाइ जीवियं, मोहं वा कसिणं नियच्छं नर-नारिं पजहे सया तवस्सी, न य कोऊहलं उवेइ स भिक्खू' । उत्तराध्ययन सूत्र १५।६॥

कल्पानुसार किसी साधक का दुःख निवारण करना और ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य की वृद्धि होती हो तथा धर्म-विनय लाभ होता हो तो अपवादरूप से इन उपरोक्त सभी कोटियों सम्भोगों में हँस-फेर भी हो जाता है ॥



अभिमत

"हम सुशील कैसे बनें ?"

यह सुन्दर कृति साधु-जीवन को उन्नत करने में बहुत ही उपयोगी और लाभप्रद है। कुछ ही पृष्ठ पढ़ने से हृदय, ऐसी बहुमूल्य कृति के लिये लेखक के श्रम को बार २ सराहने लगा। आज के युग में ऐसे पुस्तक-रत्नों की और भी अधिक आवश्यकता है। नवदीक्षित युवा मुनियों को तो इस से अनगिनत लाभ हो सकते हैं जो कि उन्हें संसार में पूज्य ही नहीं—आदर्श-मुनि भी सहज में ही बना सकते हैं। लेखक के पुनीत अथ च सराहनीय परिश्रम को यदि वे सार्थक करेंगे तो लेखक को ही नहीं, मुझे भी महान् हर्ष हूए बिना न रहेगा। ऐसी उत्तम कृति को लिखने में महान् श्रम के लिये लेखक को पुनः पुनः धन्यवाद ॥

—चन्दन मुनि
पट्टी (भमृतसर)

विषयक वार्तालापरूप कथाप्रबन्ध-सम्भोग के अतिरिक्त और कोई सम्भोग नहीं होता ।

(६) गृहस्थवर्ग—गृहस्थियों से, अपवादरूप वाचना को छोड़कर, विधिपूर्वक पृच्छना आदि श्रुतसम्भोग के अतिरिक्त आरम्भ के १० सम्भोग नहीं होते, अर्थात् पृच्छनादि श्रुत-सम्भोग, निपद्या-सम्भोग, और वार्तालापादि कथा-प्रबन्ध-सम्भोग—ये तीन सम्भोग होते हैं । गृहस्थ-स्त्रियों से ये तीन भी नहीं होते । पुरुषों में भी योग्य गृहस्थों से होते हैं । सामान्यतया भगवान् का आदेश है कि 'गिही संथवं न कुज्जा, कुज्जा साहूहि संथवं'—दशवैकालिक सूत्र ८।५३॥ तथा जिन स्त्री-पुरुषों के संसर्ग से संयमी-जीवन और ज्ञान-ध्यान को क्षति पहुँचती हो उन नर-नारियों का सम्पर्क छोड़ देना चाहिये 'जेण पुण जहाइ जीवियं, मोहं वा कसिणं नियच्छइ । नर-नारिं पजहे सया तवस्सी, न य कोऊहलं उवेइ स भिक्खू' ॥—उत्तराव्ययन सूत्र १५।६॥

कल्पानुसार किसी साधक का दुःख निवारण करना हो और ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य की वृद्धि होती हो तथा धर्म-विनय का लाभ होता हो तो अपवादरूप से इन उपरोक्त सभी कोटियों के सम्भोगों में हँस-फेर भी हो जाता है ॥



“हम सुशील कैसे बनें ?”

यह सुन्दर कृति साधु-जीवन को उन्नत करने में बहुत ही उपयोगी और लाभप्रद है। कुछ ही पृष्ठ पढ़ने से हृदय, ऐसी बहुमूल्य कृति के लिये लेखक के श्रम को बार २ सराहने लगा। आज के युग में ऐसे पुस्तक-रत्नों की और भी अधिक आवश्यकता है। नवदीक्षित युवा मुनियों को तो इस से अनगिनत लाभ हो सकते हैं जो कि उन्हें संसार में पूज्य ही नहीं—आदर्श-मुनि भी सहज में ही बना सकते हैं। लेखक के पुनीत अथ च सराहनीय परिश्रम को यदि वे सार्थक करेंगे तो लेखक को ही नहीं, मुझे भी महान् हर्ष हुए बिना न रहेगा। ऐसी उत्तम कृति को लिखने में महान् श्रम के लिये लेखक को पुनः पुनः धन्यवाद ॥

—चन्दन मुनि
पट्टी (भमृतसर)